श्री आचार्य नेमिचंद्र विरचित

श्री गोम्मटसार कर्मकाण्ड

अधिकार 2
योगस्थान

Presentation Developed By :
Smt Sarika Chhabra

मंगलाचरण

पणमिय सिरसा णेमिं, गुणरयणविभूसणं महावीरं ।
सम्मत्तरयणणिलयं, पयडिसमुक्कित्तणं वोच्छं ॥ 1 ॥
णमिऊण णेमिचंदं, असहायपरक्कमं महावीरं ।
बंधुदयसत्तजुत्तं, ओघादेसे थवं वोच्छं ॥ 87 ॥

Designed by Pngtree

जोगट्ठाणा तिविहा, उववादेयंतवड्ढिपरिणामा ।
भेदा एक्केक्कंपि य, चोद्दसभेदा पुणो तिविहा ॥218॥

- अर्थ— उपपाद योगस्थान, एकांतवृद्धि योगस्थान, परिणाम योगस्थान – इस प्रकार योगस्थान तीन प्रकार के हैं । और
- एक-एक भेद के भी 14 जीवसमास की अपेक्षा चौदह-चौदह भेद हैं । तथा
- ये 14 भी सामान्य, जघन्य और उत्कृष्ट की अपेक्षा तीन-तीन प्रकार के हैं ॥218॥

www.JainKosh.org

योग

भाव योग

कर्म-नोकर्म को ग्रहण करने की जीव की शक्ति-विशेष

द्रव्य योग

आत्म-प्रदेशों में परिस्पन्दन (कम्पन)

इसमें निमित्त

मन वचन काय की क्रिया (चेष्टा) (अंगोपांग व शरीर नामकर्म के उदयपूर्वक)

www.JainKo

योग-स्थान

जीव के प्रदेशों का परिस्पन्द योग कहलाता है ।

ऐसे विभिन्न प्रकार के योगों के समूह को योगस्थान कहते हैं ।

www.JainKosh.org

योगस्थान के प्रकार

उपपाद	•14 जीव-समास के
एकान्तानुवृद्धि	•14 जीव-समास के
परिणाम	•14 जीव-समास के

www.JainKosh.org

उववादजोगठाणा, भवादिसमयट्ठियस्स अवरवरा ।
विग्गहउजुगइगमणे, जीवसमासे मुणेयव्वा ॥219॥

- अर्थ— पर्याय धारण करने के पहले समय में तिष्ठते हुए जीव के उपपाद योगस्थान होते हैं ।
- उनमें से जघन्य उपपाद स्थान उस जीव के होते है जो कि वक्रगति से (बीच में मुड़कर) नवीन पर्याय को प्राप्त हो, और
- जो जीव ऋजुगति (अर्थात् बीच में नहीं मुड़े ऐसी गति) से नवीन पर्याय धारण करे उसके उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान होते हैं ।
- ये सब उपपाद योगस्थान चौदह जीवसमासों (भेदों) में जान लेना ॥219॥

www.JainKosh.org

उपपाद योगस्थान

'उपपद्यते' अर्थात्

जो जीव के द्वारा

भव के प्रथम समय में

प्राप्त किया जाता है,

उसे उपपाद योगस्थान योगस्थान कहते हैं ।

यह मात्र भव के प्रथम समय में ही पाया जाता है ।

www.JainKosh.org

जघन्य उपपाद योगस्थान

- विग्रहगति से जन्म धारण करने वाले के प्रथम समय में जघन्य उपपाद योगस्थान होता है ।

उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान

- ऋजुगति से जन्म धारण करने वाले के प्रथम समय में उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान होता है ।

www.JainKosh.org

परिणामजोगठाणा, सरीरपज्जत्तगादु चरिमोत्ति ।
लद्धिअपज्जत्ताणं, चरिमतिभागम्हि बोधव्वा ॥220॥

- अर्थ— शरीरपर्याप्ति के पूर्ण होने के समय से लेकर आयु के अंत तक परिणाम योगस्थान कहे जाते हैं । और
- जिसकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती ऐसे लब्ध्यपर्याप्तक जीव के अपनी आयु के अंत के त्रिभाग के प्रथम समय से लेकर अंत के समय तक स्थिति के सब भेदों में उत्कृष्ट और जघन्य दोनों प्रकार के परिणाम योगस्थान जानना ॥220॥

www.JainKosh.org

परिणाम योगस्थान

पर्याप्त जीव	• शरीर पर्याप्ति से लेकर आयु पर्यन्त
लब्धि-अपर्याप्त जीव	• आयु का त्रिभाग शेष रहने से लेकर आयु पर्यन्त (क्योंकि इसकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती)

www.JainKosh.org

विशेष

प्रत्येक जीव को आयु का बंध

परिणाम योगस्थान में ही होता है ।

ये परिणाम योगस्थान घोटमान कहलाते हैं क्योंकि ये घटते भी हैं, बढ़ते भी हैं, अवस्थित भी रहते हैं ।

www.JainKosh

सगपज्जत्तीपुण्णे, उवरिं सव्वत्थ जोगमुक्कस्सं ।
सव्वत्थ होदि अवरं, लद्धिअपुण्णस्स जेट्ठंपि ॥221॥

- अर्थ— अपनी-अपनी शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने के समय से लेकर अपनी-अपनी आयु के अंत समय तक सम्पूर्ण समयों में परिणामयोगस्थान उत्कृष्ट भी होते हैं और जघन्य भी संभवते हैं । और
- इसी तरह लब्ध्यपर्याप्तक के भी अपनी स्थिति के सब भेदों में दोनों परिणामयोगस्थान संभव हैं ॥221॥

www.JainKosh.org

शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने से लेकर आयु पर्यन्त ये परिणाम योगस्थान जघन्य भी होते हैं, उत्कृष्ट भी होते हैं ।

इसी प्रकार लब्धि अपर्याप्तक के भी परिणाम योगस्थान अपने काल में जघन्य भी होते हैं, उत्कृष्ट भी होते हैं ।

एयंतवड्ढिठाणा, उभयट्ठाणाणमंतरे होंति ।
अवरवरट्ठाणाओ, सगकालादिम्हि अंतम्हि ॥222॥

- अर्थ— एकान्तानुवृद्धि योगस्थान, उपपाद और परिणाम दोनों स्थानों के बीच में, अर्थात् पर्याय धारण करने के दूसरे समय से लेकर एक समय कम शरीर पर्याप्ति के अंतर्मुहूर्त के अंत समय तक होते हैं ।
- उनमें जघन्यस्थान तो अपने काल के पहले समय में और उत्कृष्ट स्थान अंत के समय में होता है ॥222॥

www.JainKosh.org

एकान्तानुवृद्धि योगस्थान

एकान्त याने नियम से

अपने काल के प्रथम समय से अंत समय तक

असंख्यात गुणा योगों की वृद्धि जहाँ होती है,

उसे एकान्तानुवृद्धि योगस्थान कहते हैं ।

यह उपपाद और परिणाम योगस्थान के अंतराल में होता है ।

www.JainKosh.org

योगस्थान

- उपपाद योगस्थान
- एकान्तानुवृद्धि योगस्थान
- परिणाम योगस्थान

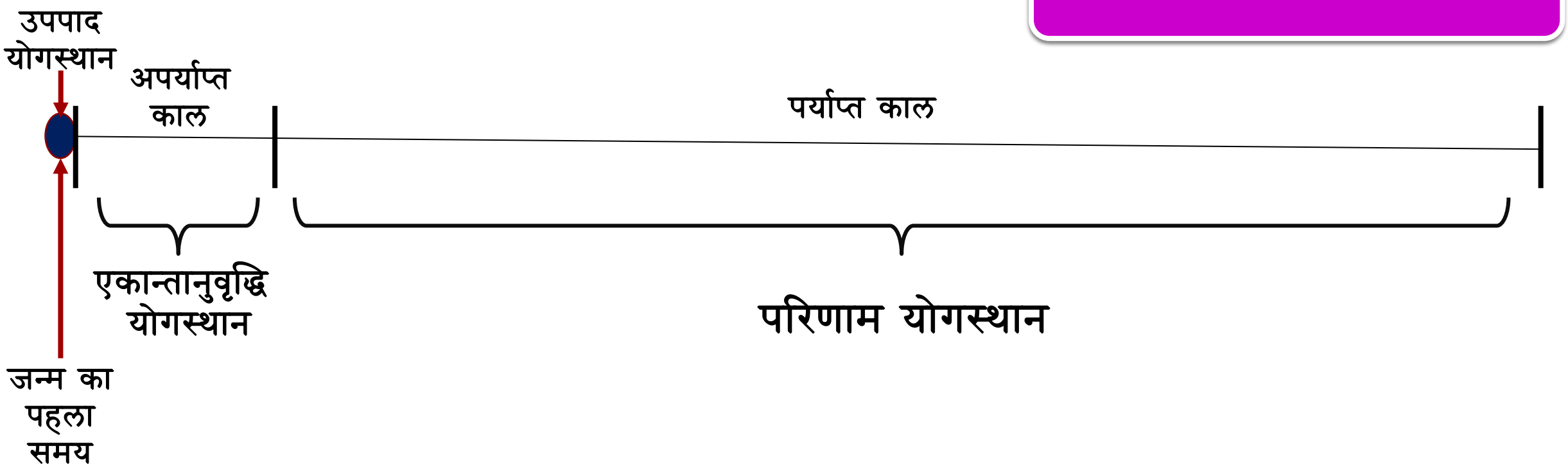

पर्याप्त जीव के योगस्थान

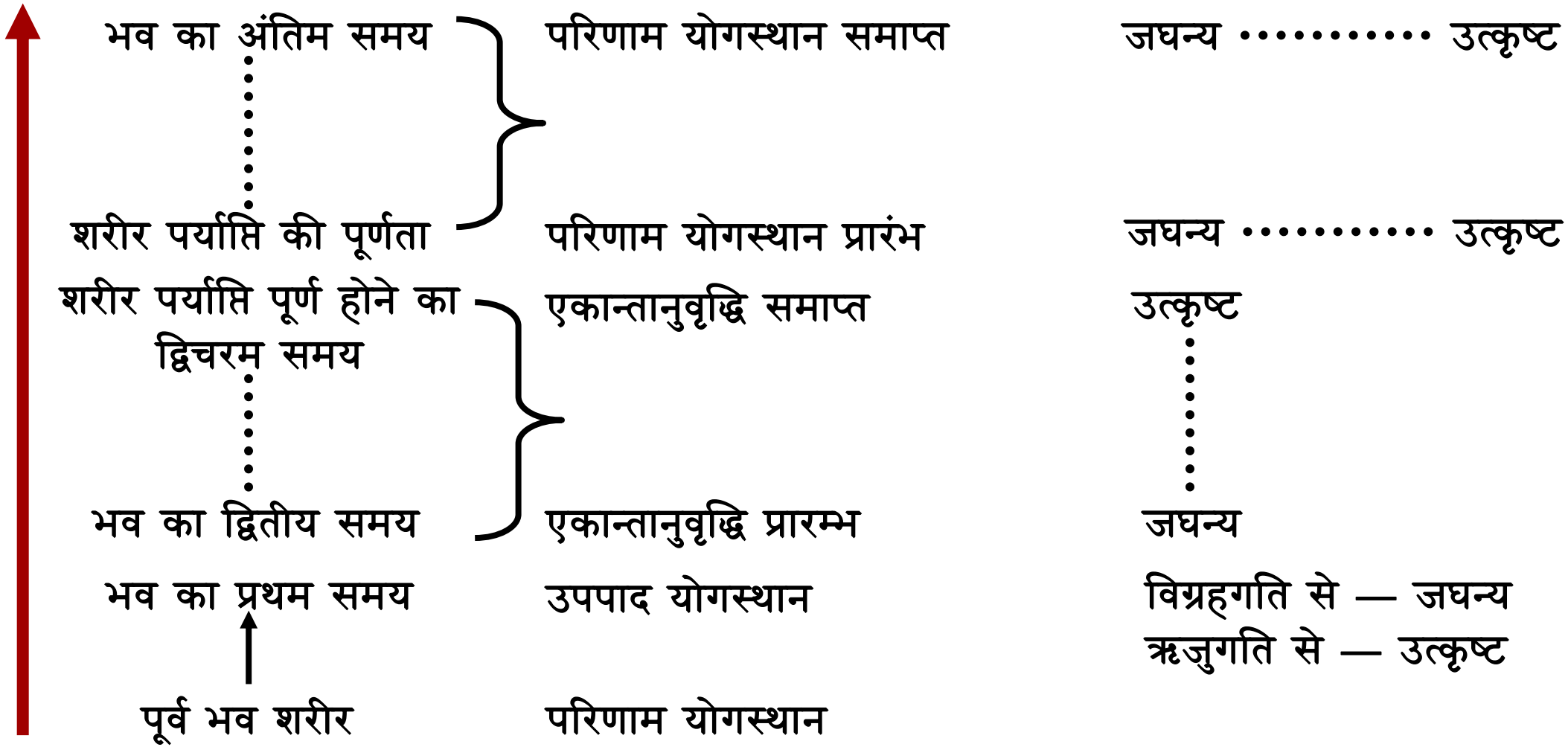

अपर्याप्त जीव के योगस्थान

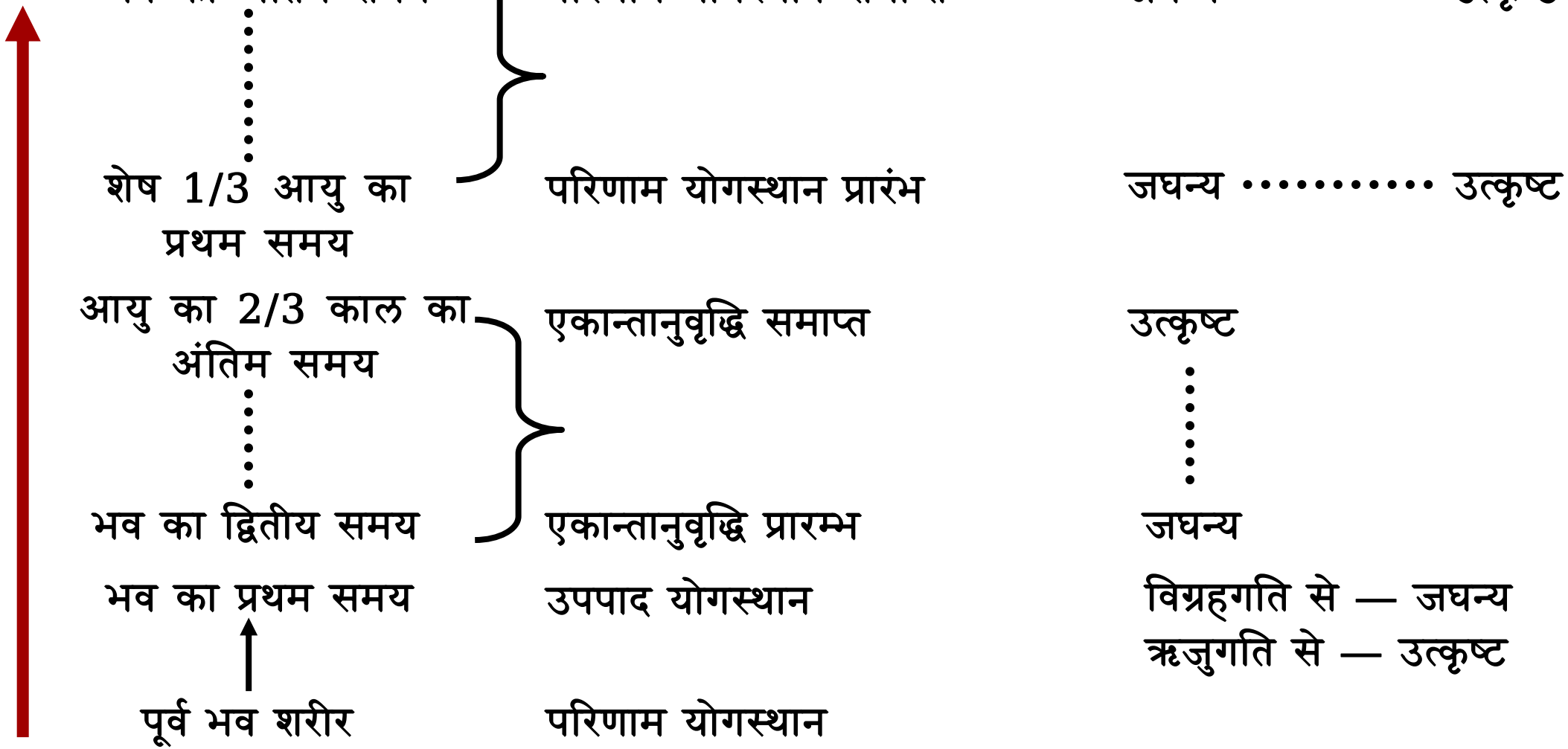

अविभागपडीच्छेदो, वग्गो पुण वग्गणा य फड्डयगं ।
गुणहाणीवि य जाणे, ठाणं पडि होदि णियमेण ॥223॥

- अर्थ— सब योगस्थान जगतश्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ।
- उनमें प्रत्येक योगस्थान में अविभाग-प्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि – ये पाँच अवयव होते हैं, ऐसा नियम से जानना ॥223॥

www.jainkosh.org

योगस्थान के अवयव

योगस्थान को समझने के लिए इसके अवयव बताते हैं ।
प्रत्येक योगस्थान में होते हैं —

अविभाग-प्रतिच्छेद	वर्ग	वर्गणा	स्पर्धक	गुणहानि	नाना गुणहानि
चंचलतारूप शक्ति का अंश	अविभाग प्रतिच्छेदों का समूह	वर्गों का समूह	वर्गणाओं का समूह	स्पर्धकों का समूह	गुणहानियों का समूह

नाना गुणहानि ही 1 योगस्थान है । ऐसे अलग-अलग असंख्यात योगस्थान पाये जाते हैं ।

पल्लासंखेज्जदिमा, गुणहाणिसला हवंति इगिठाणे ।
गुणहाणिफड्ढयाओ, असंखभागं तु सेढीये ॥224॥

- अर्थ— एक योगस्थान में गुणहानि की शलाका (संख्याएँ) पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । यह नाना गुणहानि का प्रमाण है । और
- एक गुणहानि में स्पर्द्धक जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥224॥

www.jainkosh.org

फड्डयगे एक्केक्के, वग्गणसंखा हु तत्तियालावा ।
एक्केक्कवग्गणाए, असंखपदरा हु वग्गाओ ॥225॥

- अर्थ— एक-एक स्पर्धक में वर्गणाओं की संख्या उतनी ही अर्थात् जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । और
- एक-एक वर्गणा में असंख्यात जगत्प्रतर प्रमाण वर्ग हैं ॥225॥

एक्केक्के पुण वग्गे, असंखलोगा हवंति अविभागा ।
अविभागस्स पमाणं, जहण्णउड्ढी पदेसाणं ॥226॥

- अर्थ— एक-एक वर्ग में असंख्यात लोक-प्रमाण अविभाग-प्रतिच्छेद होते हैं । और
- अविभाग-प्रतिच्छेद का प्रमाण प्रदेशों में जघन्य वृद्धि-स्वरूप जानना ।

www.JainKosh.org

योगस्थान के अवयव

अवयव	प्रमाण	अर्थ संदृष्टि
1 योगस्थान में गुणहानियाँ	$\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$	$\frac{\text{प}}{\partial\partial}$
1 गुणहानि में स्पर्धक संख्या	$\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}}$	$\overline{\partial\partial}$
1 स्पर्धक में वर्गणा संख्या	$\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}}$	$\overline{\partial}$
1 वर्गणा में वर्ग	जगत्प्रतर × असंख्यात	= × ∂
1 वर्ग में अविभाग-प्रतिच्छेद	असंख्यात लोक	≡ ∂

अविभाग-प्रतिच्छेद

जिसका दूसरा विभाग नहीं हो सकता, ऐसे शक्ति के अंश को अविभाग-प्रतिच्छेद कहते हैं ।

जो योगों में जघन्य वृद्धि का प्रमाण है, वही यहाँ 1 अविभाग-प्रतिच्छेद है ।

जैसे सबसे कम शक्ति वाले प्रदेश की शक्ति 8 है । इससे अगले प्रदेश की शक्ति 10 है । तो यहाँ 2 शक्ति बढ़ी, वही 1 अविभाग-प्रतिच्छेद का प्रमाण है । 1 वर्ग में इससे कम वृद्धि नहीं पायी जाती है ।

अविभाग-प्रतिच्छेद

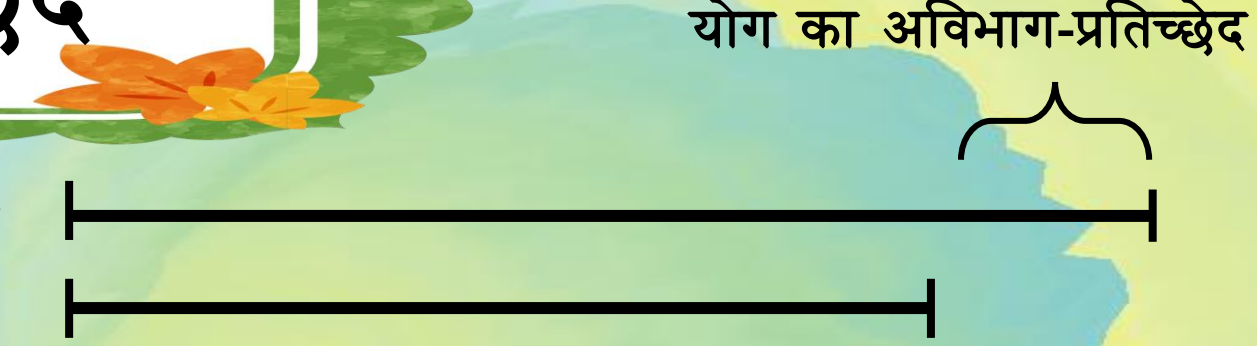

आत्मा के जिस प्रदेश में जघन्य योग शक्ति पाई जाती है उससे अधिक शक्ति का धारी जो दूसरा प्रदेश है उसमे जघन्य शक्ति से जितनी अधिक शक्ति होती है उस वृद्धि का प्रमाण योग का अविभाग प्रतिच्छेद कहलाता है।

यह कर्म के अविभाग-प्रतिच्छेद से भिन्न है।

एक प्रदेश में असंख्यात लोकप्रमाण अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं । एक प्रदेश का नाम ही यहाँ वर्ग है।

इगिठाणफड्ढुयाओ, वग्गणसंखा पदेसगुणहाणी ।
सेढिअसंखेज्जदिमा, असंखलोगा हु अविभागा ॥227॥

- अर्थ— एक योगस्थान में सब स्पर्धक, सब वर्गणाओं की संख्या और गुणहानि-आयाम का प्रमाण सामान्यपने से जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र है ।
- एक योगस्थान में अविभाग-प्रतिच्छेद असंख्यातलोक प्रमाण होते हैं ॥227॥

www.JainKosh.org

1 योगस्थान के स्पर्धक	• नाना गुणहानि × 1 गुणहानि के स्पर्धक • $\frac{\text{प}}{\partial\partial} \times \frac{-}{\partial\partial}$
1 योगस्थान की वर्गणाएँ (यह ही स्थिति का प्रमाण है । याने इतने ही स्थानों में द्रव्य को बांटना है)	• 1 योगस्थान के स्पर्धक × 1 स्पर्धक की वर्गणा • $\frac{\text{प}}{\partial\partial} \times \frac{-}{\partial\partial} \times \frac{-}{\partial}$
1 गुणहानि की वर्गणाएँ (गुणहानि आयाम)	• गुणहानि के स्पर्धक × 1 स्पर्धक की वर्गणा • $\frac{-}{\partial\partial} \times \frac{-}{\partial}$
1 योगस्थान के समस्त अविभाग-प्रतिच्छेद	• असंख्यात लोक • $\equiv \partial$

Note: योगस्थान के अविभाग-प्रतिच्छेद अनन्त नहीं पाये जाते । असंख्यात ही होते हैं ।

सव्वे जीवपदेसे, दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा ।
उवरिं उत्तरहीणं, गुणहाणिं पडि तदद्धकमं ॥228॥

- अर्थ— एक जीव के लोक-प्रमाण (असंख्यात) सब प्रदेशों को डेढ़गुणहानि का भाग देने पर पहली गुणहानि की पहली वर्गणा होती है ।
- इसके बाद एक-एक चय घटाने पर द्वितीयादि वर्गणाओं का प्रमाण होता है । और
- पूर्व गुणहानि से उत्तर गुणहानि का प्रमाण क्रम से आधा-आधा जानना ॥228॥

www.JainKosh.org

विशेष

यहाँ आत्म-प्रदेशों में जो योगरूप शक्ति पायी जाती है, उसे दर्शाना है ।

प्रत्येक प्रदेश में एक-सी शक्ति ही नहीं पायी जाती ।

अनेक प्रदेशों में जघन्य शक्ति, अनेक दूसरे प्रदेशों में अधिक शक्ति, इस प्रकार से भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न शक्तियाँ पायी जाती हैं ।

www.JainKosh.org

वर्गणा

जिन प्रदेश समूह में समान शक्ति होती है, उनके समूह को एक वर्गणा कहते हैं ।

सबसे हीन शक्ति वाली वर्गणा को जघन्य वर्गणा कहते हैं ।

इससे अगली शक्ति वाली वर्गणा को द्वितीय वर्गणा कहते हैं ।

इससे अगली शक्ति वाली वर्गणा को तृतीय वर्गणा कहते हैं ।

इस प्रकार अंतिम वर्गणा तक लेकर जाना । ऐसी कुल वर्गणायें $\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}}$ प्रमाण होती हैं ।

ध्यान रहे यहाँ वर्ग, वर्गणा आदि से तात्पर्य जीव-प्रदेश हैं, ना कि परमाणु या कर्म आदि ।

वर्गणा

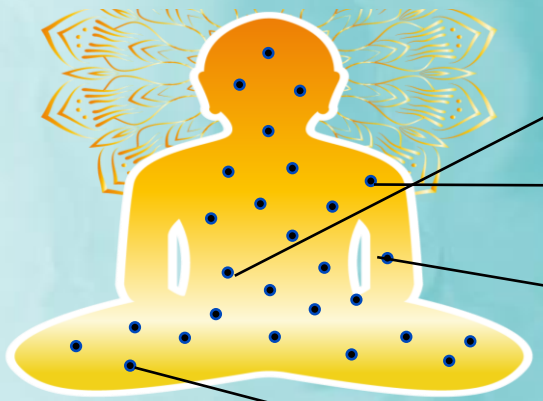

जघन्य योग शक्ति युक्त वर्ग

जघन्य योग शक्ति युक्त वर्ग

जघन्य योग शक्ति युक्त वर्ग

जघन्य योग शक्ति युक्त वर्ग

जघन्य वर्गों का समूह जघन्य वर्गणा 1

जघन्य योग +1 शक्ति युक्त वर्ग

जघन्य योग +1 शक्ति युक्त वर्ग

जघन्य योग+1 शक्ति युक्त वर्ग

वर्गणा 2 (एक चय कम वर्गों का समूह)

वर्गणाओं का समूह = स्पर्धक

www.JainKosh.org

स्पर्धक

जघन्य वर्गणा से लेकर एक स्पर्धक शलाका तक पायी जाने वाली शलाकाओं के समूह को स्पर्धक कहते हैं । यह जघन्य स्पर्धक कहलाता है ।

अगली वर्गणा से लेकर एक स्पर्धक शलाका तक पायी जाने वाली वर्गणाओं के समूह को द्वितीय स्पर्धक कहते हैं ।

इस प्रकार तृतीय आदि स्पर्धक क्रम से जानना चाहिये ।

कुल स्पर्धक $\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}} \times \frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}}$ प्रमाण होते हैं ।

यहाँ उदाहरण में 4 वर्गणाओं का एक स्पर्धक माना है । तथा 2 स्पर्धकों का समूह गुणहानि माना है ।

चय और गुणहानि

प्रथम वर्गणा से द्वितीय वर्गणा के प्रदेशों का प्रमाण हीन होता है ।

द्वितीय वर्गणा से तृतीय वर्गणा के प्रदेशों का प्रमाण हीन होता है ।

इस हीन होने वाली संख्या को चय कहते हैं । प्रत्येक वर्गणा क्रमशः 1-1 चय हीन होती जाती है ।

जब प्रथम वर्गणा आधी हो जाती है, तब तत्प्रमाण वर्गणाओं का समूह गुणहानि कहलाता है ।

वर्गणा चूंकि संख्यातगुणी हीन हो गयी है, इसलिए इसे गुणहानि कहते हैं ।

दूसरी गुणहानि

जहाँ वर्गणा आधी हो गई, वहाँ से द्वितीय गुणहानि प्रारंभ हो जाती है । यहाँ चय का प्रमाण भी पूर्व से आधा हो जाता है ।

पुनः द्वितीय गुणहानि की प्रथम वर्गणा से द्वितीय वर्गणा में 1 चय हीन होता है ।

पुनः द्वितीय गुणहानि की द्वितीय वर्गणा से तृतीय वर्गणा में 1 चय हीन होता है ।

इस प्रकार क्रमशः करते हुये द्वितीय वर्गणा की प्रथम वर्गणा का द्रव्य आधा रह जाता है । यह दूसरी गुणहानि समाप्त हुई ।

तृतीय आदि गुणहानियाँ

जहाँ वर्गणा आधी हो गई थी, वहाँ से तीसरी गुणहानि प्रारंभ होती है । चय का प्रमाण भी पहले से आधा हो जाता है ।

इस प्रकार तृतीय, चतुर्थ आदि $\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}\,\text{असंख्यात}}$ प्रमाण गुणहानियाँ होती हैं ।

इनमें प्रत्येक वर्गणा में द्रव्य चयहीन क्रम से पाया जाता है ।

www.JainKosh.org

सारे अवयवों को उदाहरण से समझते हैं–

	द्रव्य	गुणहानि आयाम	नाना गुणहानि	2 गुणहानि	अन्योन्याभ्यस्त राशि
अर्थ संदृष्टि	≡	$\overline{\partial\ \partial}$	पल्य $\partial\ \partial$	$\overline{\partial\ \partial} \times 2$	$\overline{\partial}$
अंक संदृष्टि	3100	8	5	16	$2^5 = 32$

अंक संदृष्टि से :

जीव प्रदेश = 3100

$$\text{प्रथम वर्गणा} = \frac{\text{सर्व द्रव्य}}{\frac{3}{2}\text{ गुणहानि}+} = \frac{3100}{\frac{3}{2}\times 8+} = \frac{3100}{12\frac{7}{64}} = 256$$

$$\text{चय} = \frac{\text{प्रथम वर्गणा}}{\text{दो गुणहानि}} = \frac{256}{2\times 8} = 16$$

	प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	तृतीय गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	पंचम गुणहानि
8	144	72	36	18	9
7	160	80	40	20	10
6	176	88	44	22	11
5	192	96	48	24	12
4	208	104	52	26	13
3	224	112	56	28	14
2	240	120	60	30	15
1	256	128	64	32	16
कुल	1600	800	400	200	100

अर्थात् इतने-इतने प्रदेश प्रथमादि वर्गणाओं में पाये जाते हैं ।

योगस्थान का बँटवारा - उदाहरण

जीवप्रदेश = 3100

नाना गुणहानि = 5

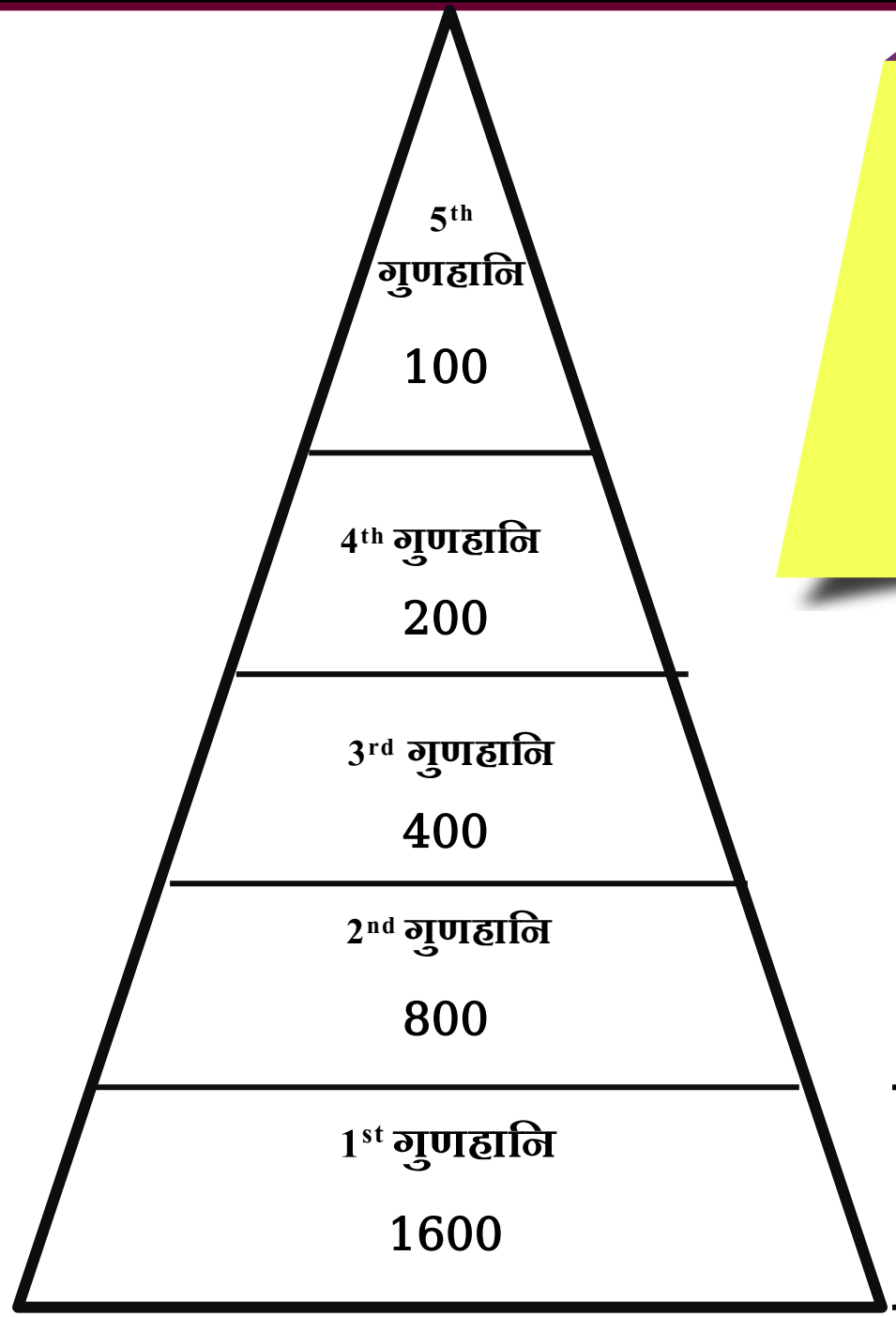

गुणहानि आयाम = 8 वर्गणा

इस प्रकार प्रथम गुणहानि से अंतिम गुणहानि तक द्रव्य आधा-आधा होता है ।

योगस्थान का बँटवारा - उदाहरण

जीवप्रदेश = 3100

नाना गुणहानि = 5

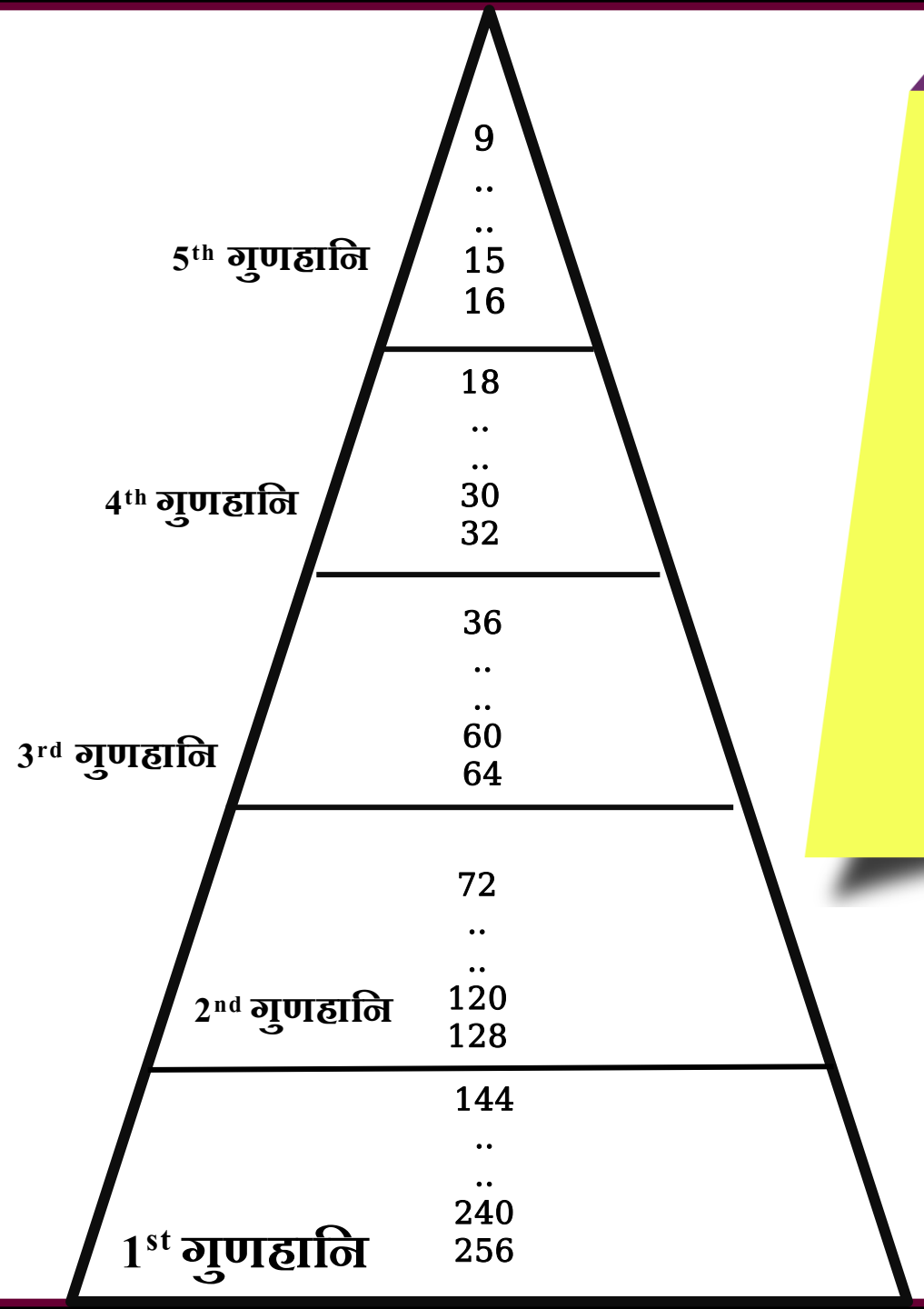

गुणहानि आयाम = 8 वर्गणा

इस प्रकार प्रथम निषेक से अंतिम निषेक तक द्रव्य घटता हुआ जाता है । इसलिए नीचे से ऊपर तक घटता क्रम दिखाया जाता है ।

फड्ढयसंखाहि गुणं, जहण्णवग्गं तु तत्थ तत्थादी ।
विदियादिवग्गगणाणं, वग्गा अविभागअहियकमा ॥229॥

- अर्थ— जघन्य वर्ग को अपने-अपने स्पर्धक की संख्या से गुणा करने पर उस-उस स्पर्धक की पहली वर्गणा का प्रमाण होता है । और
- दूसरी आदि वर्गणा क्रम से वर्ग में एक-एक अविभाग-प्रतिच्छेद बढ़ाने पर होती है ॥229॥

www.JainKosh.org

शक्ति अपेक्षा वर्णन

जघन्य वर्गणा के 1 वर्ग में सबसे जघन्य शक्ति पायी जाती है । उसको संदृष्टि में ८ माना ।

अगली वर्गणा के 1 वर्ग की शक्ति इससे 1 अधिक पायी जाती है । संदृष्टि: ९

अगली वर्गणा के 1 वर्ग की शक्ति इससे 1 अधिक पायी जाती है । संदृष्टि: १०

ऐसे 1 स्पर्धक की प्रत्येक वर्गणा के 1-1 वर्ग की शक्ति एक-एक अविभाग-प्रतिच्छेद से बढ़ाना ।

उदाहरण में एक स्पर्धक की वर्गणा संख्या 4 मानी है ।

११

१० १०

९ ९ ९

८ ८ ८ ८

प्रथम स्पर्धक

यह स्पर्धक इस प्रकार से दर्शाया जाता है ।

www.JainKosh.org

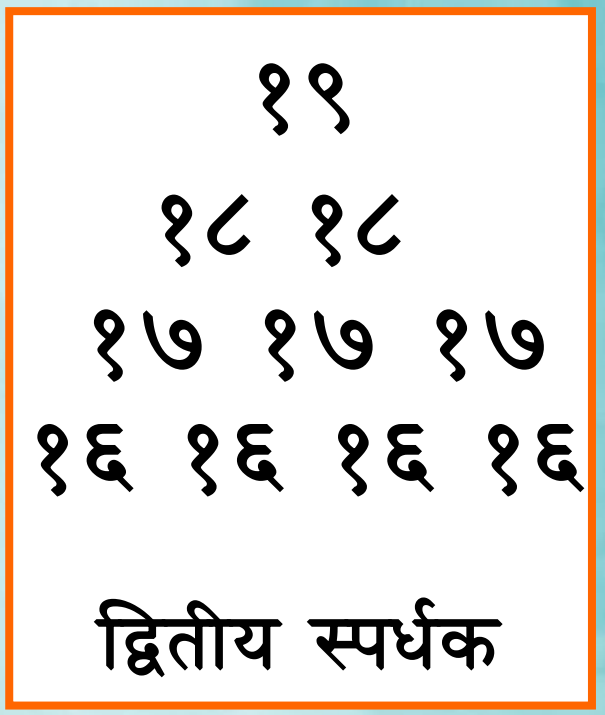

१९

१८ १८

१७ १७ १७

१६ १६ १६ १६

द्वितीय स्पर्धक

द्वितीय स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के 1 वर्ग की शक्ति जघन्य वर्ग से दुगुनी होती है ।

सूत्र: स्पर्धक के जघन्य वर्ग की शक्ति = जघन्य वर्ग × स्पर्धक की संख्या

द्वितीय स्पर्धक की जघन्य शक्ति = ८ × 2 = १६

इसके पश्चात् अगली-अगली वर्गणा के वर्ग एक-एक शक्ति से बढ़ते हैं ।

तृतीय स्पर्धक की जघन्य शक्ति = ८ × 3 = २४

चतुर्थ स्पर्धक की जघन्य शक्ति = ८ × 4 = ३२

ऐसे क्रम से असंख्यात स्पर्धकों में शक्ति बढ़ती-बढ़ती जानना ।

२७	३५	४३
२६ २६	३४ ३४	४२ ४२
२५ २५ २५	३३ ३३ ३३	४१ ४१ ४१
२४ २४ २४ २४	३२ ३२ ३२ ३२	४० ४० ४० ४०
तृतीय स्पर्धक	चतुर्थ स्पर्धक	पंचम स्पर्धक

प्रथम गुणहानि

एक स्पर्धक से दूसरे स्पर्धक में शक्ति बढ़ती जाती है, पर प्रदेशों का प्रमाण कम होता जाता है ।

अब प्रदेशों एवं शक्ति दोनों को एक साथ दिखाते हैं ।

प्रदेश	शक्ति	कुल शक्ति
144	19	2736
160	18	2880
176	17	2992
192	16	3072
208	11	2288
224	10	2240
240	9	2160
256	8	2048
प्रथम गुणहानि की शक्ति		**20416**

द्वितीय गुणहानि	शक्ति	कुल शक्ति
72	35	2520
80	34	2720
88	33	2904
96	32	3072
104	27	2808
112	26	2912
120	25	3000
128	24	3072
Total= 800		23008

www.JainKosh.org

तृतीय गुणहानि	शक्ति	कुल शक्ति
36	51	1836
40	50	2000
44	49	2156
48	48	2304
52	43	2236
56	42	2352
60	41	2460
64	40	2560
Total= 400		17904

www.JainKosh.org

चतुर्थ गुणहानि	शक्ति	कुल शक्ति
18	67	1206
20	66	1320
22	65	1430
24	64	1536
26	59	1534
28	58	1624
30	57	1710
32	56	1792
Total= 200		12152

www.JainKosh.org

पंचम गुणहानि	शक्ति	कुल शक्ति
9	83	747
10	82	820
11	81	891
12	80	960
13	75	975
14	74	1036
15	73	1095
16	72	1152
Total=100		7676

कुल	20416	23008	17904	12152	7676	81156

www.JainKosh.org

जघन्य योगस्थान

ऐसे ही दूसरे, तीसरे आदि स्पर्धकों में क्रम से ले जाना ।

इन सब गुणहानियों में स्थित शक्तियों का समुदाय एक योगस्थान कहलाता है ।

यह सबसे जघन्य योगस्थान है ।

इससे बढ़ती शक्ति वाले योगस्थान आगे पाये जाते हैं ।

जघन्य योगस्थान - वास्तविक संख्याएँ

प्रथम वर्गणा $=$ $\frac{\text{जीव प्रदेश}}{\frac{3}{2}\text{ गुणहानि}}$

चय $=$ $\frac{\text{प्रथम वर्गणा}}{\text{दो गुणहानि}}$

$\frac{\text{लोकप्रमाण प्रदेश}}{\frac{3}{2} \times \text{श्रेणी असंख्यात} \times \text{असंख्यात}}$

$\frac{= \times \partial\partial}{2 \times \text{श्रेणी असंख्यात असंख्यात}}$

जगत्प्रतर × असंख्यात

असंख्यात श्रेणी

इसी को संदृष्टि में ऐसे लिखा जाता है : $= \times \partial\partial$

इसी को संदृष्टि में ऐसे लिखा जाता है: — $\partial\ \partial\ \partial\ \partial$

प्रथम स्पर्धक की शक्ति

इसका तात्पर्य है कि जगत्श्रेणी × असंख्यात प्रदेशों में जघन्य शक्ति होती है ।

प्रथम वर्गणा में से 1 चय कम करने पर द्वितीय वर्गणा आती है ।

द्वितीय वर्गणा में 1 अविभाग-प्रतिच्छेद अधिक शक्ति होती है ।

इससे 1 चय कम प्रदेशों में 1 अविभाग-प्रतिच्छेद अधिक शक्ति होती है ।

इस प्रकार प्रथम स्पर्धक की अंतिम वर्गणा तक जानना ।

www.JainKosh.org

द्वितीय आदि स्पर्धकों की शक्ति

- इसके पश्चात् द्वितीय स्पर्धक की आदि वर्गणा प्रमाण प्रदेशों में (जघन्य वर्ग × 2) शक्ति होती है
- इससे 1 कम चय प्रदेशों में 1 अविभाग-प्रतिच्छेद शक्ति अधिक होती है ।
- इस प्रकार क्रम से द्वितीय स्पर्धक की अंतिम वर्गणा तक जानना ।
- तीसरे स्पर्धक में भी चयहीन क्रम से द्रव्य और बढ़ती हुई शक्ति मानना । ऐसा करते हुए जब प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के प्रमाण से आधा प्राप्त हो जाता है, तब प्रथम गुणहानि समाप्त होती है और दूसरी गुणहानि प्रारंभ होती है। तब चय का प्रमाण भी आधा हो जाता है ।
- ऐसे प्रत्येक गुणहानि में द्रव्य आधा-आधा और शक्ति यथायोग्य बढ़ती जाती है ।

www.JainKosh.org

अंगुलअसंखभागप्पमाणमेत्तऽवरफड्डयावड्ढि ।
अंतरछक्कं मुच्चा, अवरट्ठाणादु उक्कस्सं ॥230॥

- अर्थ— छह अंतरस्थानों को छोड़कर, जघन्यस्थान से लेकर उत्कृष्ट स्थानपर्यंत सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धकों की वृद्धि क्रम से जानना । अर्थात् एक योगस्थान से दूसरे योगस्थान में पूर्वोक्त प्रमाण स्पर्धक बढ़ते हैं ।
- इसी प्रकार तीसरे आदि स्थानों में भी ऐसा ही क्रम जानना ॥230॥

www.JainKosh.org

द्वितीय योगस्थान

जघन्य योगस्थान में जितने अविभाग-प्रतिच्छेद हैं, उनमें

$\left(\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}} \times \text{जघन्य स्पर्धक}\right)$ प्रमाण अविभाग-

प्रतिच्छेद बढ़ने पर दूसरा योगस्थान होता है ।

www.jainkosh.org

उदाहरण

माना जघन्य योगस्थान = 180000 । इसी को जघन्य स्पर्धक के रूप में परिवर्तित करते हैं ।

2250 शक्ति का 1 जघन्य स्पर्धक है, तो 180000 शक्ति के कितने जघन्य स्पर्धक होंगे ?

$\frac{1}{2250} \times 180000 = 80$ जघन्य स्पर्धक

जघन्य योगस्थान में 80 जघन्य स्पर्धक पाये जाते हैं ।

दूसरे योगस्थान में $\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}}$ प्रमाण जघन्य स्पर्धक बढ़ते हैं ।

- माना कि $\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}} = 2$
- तो 2 जघन्य स्पर्धक बढ़ने पर दूसरा योगस्थान होता है ।
  - 80 + 2 = 82 जघन्य स्पर्धक = द्वितीय योगस्थान
- इसी प्रकार तृतीय योगस्थान में इतने ही जघन्य स्पर्धक बढ़ते हैं ।
  - 82 + 2 = 84 जघन्य स्पर्धक = तृतीय योगस्थान
- इसी प्रकार 6 अंतरों को छोड़कर सभी योगस्थान एक सदृश वृद्धि से बढ़ते हैं । जघन्य योगस्थान से उत्कृष्ट योगस्थान तक प्रत्येक योगस्थान में

जघन्य स्पर्धक × $\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}}$ शक्ति की वृद्धि होती है ।

www.JainKosh.org

- द्वितीय योगस्थान में 2 जघन्य स्पर्धक बढ़े =
- 2 x 2250 = 4500 शक्ति
- 180000 + 4500 = 184500.
- तृतीय योगस्थान में 184500+4500 = 189000

www.JainKosh.org

सरिसायामेणुवरिं सेढिअसंखेज्जभागठाणाणि ।
चडिदेक्केक्कमपुव्वं फड्डयमिह जायदे चयदो ॥231॥

- अर्थ— समान आयाम के धारण करने वाले सर्वजघन्य योगस्थान के ऊपर चयप्रमाण की उत्तरोत्तर क्रम से वृद्धि करते-करते एक अपूर्व स्पर्धक उत्पन्न होता है ।
- कितने स्थान तक चयवृद्धि होने से अपूर्व स्पर्धक की उत्पत्ति होती है ? तो त्रैराशिक गणित के हिसाब से उन स्थानों का प्रमाण जगच्छ्रेणी का असंख्यातवां भाग होता है । ॥231॥

www.JainKosh.org

कितने योगस्थान जाने पर जघन्य योगस्थान से दुगुणा योगस्थान आता है ?

उदाहरण

- 2 जघन्य स्पर्धक बढ़ने पर 1 योगस्थान बढ़ता है,
- तो 80 जघन्य स्पर्धक बढ़ने पर कितने योगस्थान होते हैं ?
- $\frac{1}{2} \times 80 = 40$ स्थान
- अर्थात् 40 योगस्थान होने पर दुगुणा योगस्थान उत्पन्न होता है । जघन्य योग में 80 जघन्य स्पर्धक हैं । दुगुने योगस्थान में $80 \times 2 = 160$ जघन्य स्पर्धक हैं ।
- यह दुगुणा योगस्थान 40 स्थान आगे जाकर प्राप्त होता है ।

www.JainKosh.org

कितने योगस्थान जाने पर जघन्य योगस्थान से दुगुणा योगस्थान आता है ?

वास्तविक गणित

- $\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}}$ प्रमाण जघन्य स्पर्धक बढ़ने पर 1 योगस्थान बढ़ता है,
- तो $\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}}$ प्रमाण जघन्य स्पर्धक बढ़ने पर कितने योगस्थान होंगे ?
- $\frac{1}{\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}}} \times \frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}} = \text{असंख्यात} \times \frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}}$ $\frac{\text{श्रेणी}}{\text{स्थान}}$
- $\text{असंख्यात} \times \frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}}$ $\frac{\text{श्रेणी}}{\text{प्रमाण}}$ स्थान जाने पर योगस्थान दुगुणा होता है ।

www.JainKosh.org

- पुनः इससे और दुगुने स्थान जाने पर जघन्य योगस्थान से चार गुणा योगस्थान होता है ।
- उदाहरण में 40 × 2 = 80 स्थान जाने पर योगस्थान चार गुणा होता है अर्थात् 80 × 4 = 320 जघन्य स्पर्धक वाला योगस्थान होता है ।
- इससे और दुगुना याने 80 × 2 = 160 स्थान जाने पर जघन्य योगस्थान से 8 गुणा योगस्थान आता है ।
- ऐसे अंतर को छोड़कर उत्कृष्ट योगस्थान की प्ररूपणा क्रमशः करनी चाहिये ।

www.JainKosh.org

एदेसिं ठाणाणं, जीवसमासाण अवरवरविसयं ।
चउरासीदिपदेहिं, अप्पाबहुगं परूवेमो ॥232॥

- अर्थ—ये जो योगस्थान कहे हैं उनमें चौदह जीवसमासों के जघन्य और उत्कृष्ट की अपेक्षा तथा उपपादादिक तीन प्रकार के योगों की अपेक्षा चौरासी स्थानों में अब अल्पबहुत्व का कथन करते हैं ॥232॥

84 योगस्थान

3 प्रकार के योगस्थान × 14 जीवसमास × जघन्य, उत्कृष्ट भेद = 84 योगस्थान

इन 84 योगस्थानों को घटते से बढ़ते क्रम में आगे कहते हैं ।

www.JainKosh.org

14 जीवसमास

क्र.	जीवसमास	
1	बादर एकेंद्रिय	पर्याप्त, अपर्याप्त 7 + 7 = 14
2	सूक्ष्म एकेंद्रिय	
3	द्वीन्द्रिय	
4	त्रीन्द्रिय	
5	चतुरिंद्रिय	
6	असंज्ञी पंचेन्द्रिय	
7	संज्ञी पंचेन्द्रिय	

सुहुमगलद्धिजहण्णं, तण्णिव्वत्तीजहण्णयं तत्तो ।
लद्धियपुण्णुक्कस्सं, बादरलद्धिस्स अवरमदो ॥233॥

- अर्थ— सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव का जघन्य उपपादस्थान सबसे थोड़ा है ।
- उससे सूक्ष्म निगोदिया निर्वृत्त्यपर्याप्तक जीव का जघन्य उपपादस्थान पल्य के असंख्यातवें भाग गुणा है ।
- उससे अधिक सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्त का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान और
- उससे अधिक बादर लब्ध्यपर्याप्त का जघन्य उपपाद योगस्थान जानना ॥233॥

www.JainKosh.org

णिव्वत्तिसुहुमजेट्ठं, बादरणिव्वत्तियस्स अवरं तु ।
बादरलद्धिस्स वरं, बीइंदियलद्धिगजहण्णं ॥234॥

- अर्थ— फिर उससे अधिक सूक्ष्म निर्वृत्त्यपर्याप्तक जीव का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान है ।
- उससे अधिक बादर निर्वृत्त्यपर्याप्तक का जघन्य योगस्थान है,
- उससे बादर लब्ध्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट योगस्थान अधिक है,
- उससे अधिक दो-इंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तक का जघन्य योगस्थान है ॥234॥

www.JainKosh.org

बादरणिव्वत्तिवरं, णिव्वत्तिबिइंदियस्स अवरमदो ।
एवं बितिबितितिचतिच, चउविमणो होदि चउविमणो ॥235॥

- अर्थ— इसके बाद उससे भी अधिक बादर एकेंद्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट योगस्थान है,
- उससे अधिक द्वीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का जघन्य योगस्थान जानना ।
- इसी प्रकार द्वीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्त का उत्कृष्ट, त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक का जघन्य उपपादस्थान, द्वीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त का उत्कृष्ट, त्रीन्द्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्त का जघन्य, त्रीन्द्रिय लब्धिअपर्याप्तक का उत्कृष्ट, चतुरिंद्रिय लब्धि-अपर्याप्त का जघन्य, निर्वृत्त्यपर्याप्तक त्रीन्द्रिय का उत्कृष्ट, निर्वृत्ति-अपर्याप्तक चतुरिंद्रिय का जघन्य, लब्धि-अपर्याप्तक चतुरिंद्रिय का उत्कृष्ट, लब्ध्यपर्याप्तक असंज्ञी पंचेन्द्रिय का जघन्य, निर्वृत्तिअपर्याप्तक चतुरिंद्रिय का उत्कृष्ट और निर्वृत्त्यपर्याप्तक असंज्ञी पंचेन्द्रिय का जघन्य उपपाद योगस्थान क्रम से अधिक-अधिक जानना ॥235॥

www.JainKosh.org

तह य असण्णीसण्णी, असण्णिसण्णिस्स सण्णिउववादं ।
सुहुमेइंदियलद्धिग, अवरं एयंतवड्ढिस्स ॥236॥

- अर्थ— इसी प्रकार उससे अधिक असंज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक का उत्कृष्टस्थान, और संज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक का जघन्यस्थान, उससे अधिक असंज्ञी निर्वृत्त्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट और संज्ञी निर्वृत्त्यपर्याप्तक का जघन्यस्थान, उससे संज्ञी पंचेंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्य के असंख्यातवेंभाग गुणा है । और उससे अधिक सूक्ष्म एकेंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तक का जघन्य एकांतानुवृद्धि योगस्थान जानना ॥236॥

www.JainKosh.org

www.JainKosh.org

84 योगस्थान – उपपाद योगस्थान

क्र	जीवसमास का नाम	योगस्थान का प्रकार	जघन्य-उत्कृष्ट	अविभाग-प्रतिच्छेद
1	सूक्ष्म एकेंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	सबसे कम
2	सूक्ष्म एकेंद्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	पूर्व से प/अस. गुणा
3	सूक्ष्म एकेंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	"
4	बादर एकेंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	"
5	सूक्ष्म एकेंद्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	"
6	बादर एकेंद्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	"
7	बादर एकेंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	"

84 योगस्थान – उपपाद योगस्थान

क्र	जीवसमास का नाम	योगस्थान का प्रकार	जघन्य-उत्कृष्ट	अविभाग-प्रतिच्छेद
8	द्वीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	पूर्व से प/अस. गुणा
9	बादर एकेंद्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	"
10	द्वीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	"
11	द्वीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	"
12	त्रीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	"
13	द्वीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	"
14	त्रीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	"
15	त्रीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	"

84 योगस्थान – उपपाद योगस्थान

क्र	जीवसमास का नाम	योगस्थान का प्रकार	जघन्य-उत्कृष्ट	अविभाग-प्रतिच्छेद
16	चतुरिंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	पूर्व से प/अस. गुणा
17	त्रीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	“
18	चतुरिंद्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	“
19	चतुरिंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	“
20	असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	“
21	चतुरिंद्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	“
22	असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	“

84 योगस्थान – उपपाद योगस्थान

क्र	जीवसमास का नाम	योगस्थान का प्रकार	जघन्य-उत्कृष्ट	अविभाग-प्रतिच्छेद
23	असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	पूर्व से प/अस. गुणा
24	संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	"
25	असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	"
26	संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	उपपाद	जघन्य	"
27	संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	"
28	सूक्ष्म एकेंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	जघन्य	"
29	संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	उपपाद	उत्कृष्ट	"

www.JainKosh.org

सण्णिस्सुववादवरं, णिव्वत्तिगदस्स सुहुमजीवस्स ।
एयंतवड्ढिअवरं, लद्धिदरे थूलथूले य ॥237॥

- अर्थ— उससे अधिक संज्ञी पंचेंद्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान, उससे अधिक सूक्ष्म एकेंद्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का जघन्य एकांतानुवृद्धि योगस्थान है, उससे अधिक बादर एकेंद्रिय लब्धि-अपर्याप्त का और बादर एकेंद्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक का जघन्य एकांतानुवृद्धि योगस्थान क्रम से पल्य के असंख्यातवें भाग गुणा है ॥237॥

www.JainKosh.org

तह सुहुम-सुहुम-जेट्ठं, तो बादरबादरे वरं होदि ।
अंतरमवरं लद्धिग-सुहुमिदरवरंपि परिणामे ॥238॥

- अर्थ— इसी प्रकार उससे सूक्ष्म एकेंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तक और सूक्ष्म एकेंद्रिय निर्वृत्त्यपर्याप्तक इन दोनों के उत्कृष्ट योगस्थान क्रम से अधिक हैं । उससे अधिक बादर एकेंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तक और बादर एकेंद्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक इन दोनों के उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धि योगस्थान हैं ।
- उसके बाद अंतर है ।
- इन स्थानों को उलंघकर सूक्ष्म एकेंद्रिय और बादर एकेंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तक इन दोनों के जघन्य और उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान क्रम से पल्य के असंख्यातवें भाग गुणे जानने ॥238॥

www.JainKosh.org

84 योगस्थान – एकान्तानुवृद्धि योगस्थान

क्र.	जीवसमास का नाम	योगस्थान का प्रकार	जघन्य-उत्कृष्ट	अविभाग-प्रतिच्छेद
30	सूक्ष्म एकेंद्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	जघन्य	पूर्व से प/अस. गुणा
31	बादर एकेंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	जघन्य	"
32	बादर एकेंद्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	जघन्य	"
33	सूक्ष्म एकेंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	उत्कृष्ट	"
34	सूक्ष्म एकेंद्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	उत्कृष्ट	"
35	बादर एकेंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	उत्कृष्ट	"
36	बादर एकेंद्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	उत्कृष्ट	"
	प्रथम अंतर			

www.JainKosh.org

प्रथम अंतर-स्थान

क्रमांक 36 से क्रमांक 37 के बीच में जगतश्रेणी के असंख्यातवे भाग प्रमाण अंतररूप योगस्थान हैं ।

उनका कोई स्वामी नहीं है अर्थात् इतने अविभाग-प्रतिच्छेद युक्त योगस्थान किसी जीव को नहीं होते हैं ।

ऐसा अर्थ सब अंतरों का जानना ।

प्रत्येक अंतर-स्थानों का प्रमाण श्रेणी के असंख्यातवे भाग मात्र है ।

अंतरमुवरीवि पुणो, तप्पुण्णाणं च उवरि अंतरियं । एयंतवड्ढिठाणा, तसपणलद्धिस्स अवरवरा ॥239॥

- अर्थ— इसके ऊपर दूसरा अंतर है ।
- अंतर के पश्चात् सूक्ष्म एकेंद्रिय और बादर एकेंद्रिय पर्याप्तकों के जघन्य और उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान क्रम से पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणे हैं ।
- फिर इस बादर एकेंद्रिय पर्याप्त के उत्कृष्ट योगस्थान के आगे तीसरा अंतर है ।
- अंतर के पश्चात् पाँच त्रसों के अर्थात् द्वीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक आदि पाँच के जघन्य और उत्कृष्ट एकांतानुवृद्धि योगस्थान क्रम से पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणे हैं ॥239॥

www.JainKosh.org

84 योगस्थान – परिणाम योगस्थान

क्र.	जीवसमास का नाम	योगस्थान का प्रकार	जघन्य-उत्कृष्ट	अविभाग-प्रतिच्छेद
37	सूक्ष्म एकेंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	पूर्व से प/अस. गुणा
38	बादर एकेंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	"
39	सूक्ष्म एकेंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	"
40	बादर एकेंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	"
	द्वितीय अंतर			
41	सूक्ष्म एकेंद्रिय पर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	"
42	बादर एकेंद्रिय पर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	"
43	सूक्ष्म एकेंद्रिय पर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	"
44	बादर एकेंद्रिय पर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	"
	तृतीय अंतर			

84 योगस्थान – एकान्तानुवृद्धि योगस्थान

क्र	जीवसमास का नाम	योगस्थान का प्रकार	जघन्य-उत्कृष्ट	अविभाग-प्रतिच्छेद
45	द्वीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	जघन्य	पूर्व से प/अस. गुणा
46	त्रीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	जघन्य	"
47	चतुरिंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	जघन्य	"
48	असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	जघन्य	"
49	संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	जघन्य	"
50	द्वीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	उत्कृष्ट	"
51	त्रीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	उत्कृष्ट	"
52	चतुरिंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	उत्कृष्ट	"
53	असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	उत्कृष्ट	"
54	संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	उत्कृष्ट	"
	चतुर्थ अंतर			

लद्धीणिव्वत्तीणं, परिणामेयंतवड्ढिठाणाओ ।
परिणामट्ठाणाओ, अंतरियंतरिय उवरुवरिं ॥240॥

- अर्थ— इसके आगे चौथा अंतर है ।
- इसके बाद लब्धि-अपर्याप्तक और निर्वृत्ति-अपर्याप्तक पांच त्रसजीवों के परिणाम योगस्थान, एकांतानुवृद्धि योगस्थान और परिणाम योगस्थान तथा इनके ऊपर बीच-बीच में अंतर सहित स्थान हैं । ये तीनों स्थान उत्कृष्ट और जघन्यपने को लिये हुए पहली रीति से क्रमपूर्वक पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणित जानने । इस तरह योगों के 84 स्थान कहे हैं ॥240॥

www.JainKosh.org

84 योगस्थान – परिणाम योगस्थान

क्र	जीवसमास का नाम	योगस्थान का प्रकार	जघन्य-उत्कृष्ट	अविभाग-प्रतिच्छेद
55	द्वीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	पूर्व से प/अस. गुणा
56	त्रीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	"
57	चतुरिंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	"
58	असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	"
59	संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	"
60	द्वीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	"
61	त्रीन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	"
62	चतुरिंद्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	"
63	असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	"
64	संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्धि-अपर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	"
	पाँचवा अंतर			

84 योगस्थान – एकान्तानुवृद्धि योगस्थान

क्र	जीवसमास का नाम	योगस्थान का प्रकार	जघन्य-उत्कृष्ट	अविभाग-प्रतिच्छेद
65	द्वीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	जघन्य	पूर्व से प/अस. गुणा
66	त्रीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	जघन्य	“
67	चतुरिंद्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	जघन्य	“
68	असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	जघन्य	“
69	संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	जघन्य	“
70	द्वीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	उत्कृष्ट	“
71	त्रीन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	उत्कृष्ट	“
72	चतुरिंद्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	उत्कृष्ट	“
73	असंज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	उत्कृष्ट	“
74	संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-अपर्याप्तक	एकान्तानुवृद्धि	उत्कृष्ट	“
	छठा अंतर			

84 योगस्थान – परिणाम योगस्थान

क्र	जीवसमास का नाम	योगस्थान का प्रकार	जघन्य-उत्कृष्ट	अविभाग-प्रतिच्छेद
75	द्वीन्द्रिय पर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	पूर्व से प/अस. गुणा
76	त्रीन्द्रिय पर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	"
77	चतुरिंद्रिय पर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	"
78	असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	"
79	संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक	परिणाम	जघन्य	"
80	द्वीन्द्रिय पर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	"
81	त्रीन्द्रिय पर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	"
82	चतुरिंद्रिय पर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	"
83	असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	"
84	संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक	परिणाम	उत्कृष्ट	"

84 योगस्थान

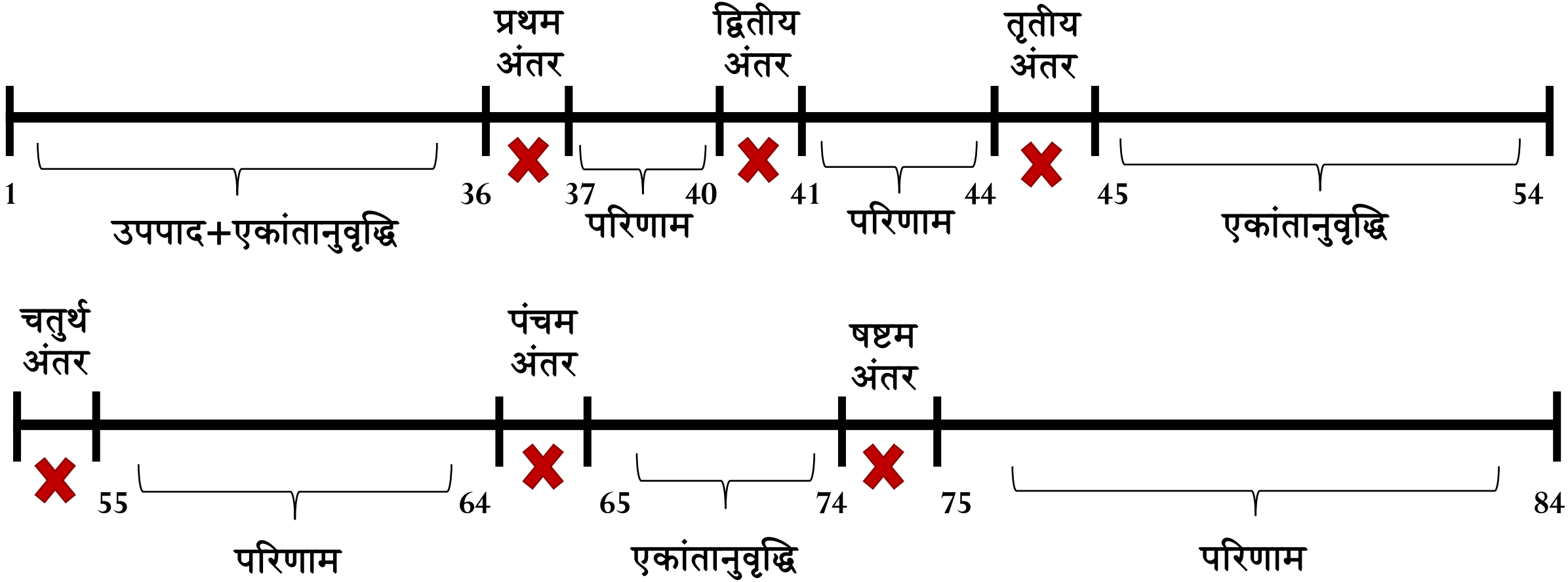

कुल योगस्थान = जगतश्रेणी/ असंख्यात

एदेसिं ठाणाओ, पल्लासंखेज्जभागगुणिदकमा ।
हेट्ठिमगुणहाणिसला, अण्णोण्णब्भत्थमेत्तं तु ॥241॥

- अर्थ— ये 84 स्थान क्रम से पल्य के असंख्यातवें भाग गुणे हैं । और
- जघन्य तथा उत्कृष्ट योगस्थानों के बीच की जो अधस्तन गुणहानि शलाकाएँ हैं वे असंख्यातरूप कम पल्य की वर्गशलाका प्रमाण है । इसी संख्या को अन्योन्याभ्यस्तराशि की "गुणकार शलाका" कहते हैं ॥141॥

www.JainKosh.org

उदाहरण : जघन्य से उत्कृष्ट योगस्थान का गुणकार

- मानाकि कुल योगस्थानों की गुणहानियाँ = 5
- यदि प्रथम योगस्थान की शक्ति = 180000
- तो द्वितीय गुणहानि के प्रथम योगस्थान की शक्ति = 180000 × 2 = 360000
- तृतीय गुणहानि के प्रथम योगस्थान की शक्ति = 360000 × 2 = 720000
- चतुर्थ गुणहानि के प्रथम योगस्थान की शक्ति = 720000 × 2 = 1440000
- पांचवी गुणहानि के प्रथम योगस्थान की शक्ति = 1440000 × 2 = 2880000
- अंतिम योगस्थान की शक्ति = पांचवी गुणहानि के दुगुने से कुछ कम याने 5760000 से कुछ कम

www.JainKosh.org

उदाहरण : जघन्य से उत्कृष्ट योगस्थान का गुणकार

- कुछ कम को ना गिनकर सीधे जघन्य योगस्थान से उत्कृष्ट योगस्थान की शक्ति निकालते हैं ।
- जघन्य योगस्थान $\times$ $2^{\text{गुणहानि की संख्या}}$ = उत्कृष्ट योगस्थान
- 180000 $\times$ 2^5 = उत्कृष्ट योगस्थान
- 180000 $\times$ 32 = उत्कृष्ट योगस्थान
- 5760000 = उत्कृष्ट योगस्थान
- अतः जघन्य योगस्थान से उत्कृष्ट योगस्थान का गुणकार $2^{\text{गुणहानि की संख्या}}$ है ।

www.JainKosh.org

जघन्य से उत्कृष्ट योगस्थान का गुणकार

- वास्तविक गणित में कुल गुणहानियों की संख्या = पल्य की वर्गशलाका – असंख्यात
- अत: जघन्य योगस्थान से उत्कृष्ट योगस्थान का गुणकार =

$$2^{(\text{पल्य की वर्गशलाका} - \text{असंख्यात})}$$

- $= \frac{2^{\text{पल्य की वर्गशलाका}}}{2^{\text{असंख्यात}}} = \frac{\text{पल्य के छेद}}{\text{असंख्यात}}$
- अर्थात् जघन्य योगस्थान से उत्कृष्ट योगस्थान $\frac{\text{छेद}}{\text{असंख्यात}}$ गुणा है ।
- याने उत्कृष्ट भी योगस्थान की शक्ति असंख्यात ही है, अनंत नहीं क्योंकि जघन्य शक्ति में मात्र असंख्यात का ही गुणकार है ।

www.JainKosh.org

अवरुक्कस्सेण हवे, उववादेयंतवड्ढिठाणाणं ।
एक्कसमयं हवे पुण, इदरेसिं जाव अट्ठोत्ति ॥242॥

- अर्थ— उपपाद योगस्थान और एकांतानुवृद्धि योगस्थानों के प्रवर्तने का काल जघन्य और उत्कृष्ट एक समय ही है । क्योंकि उपपादस्थान जन्म के प्रथम समय में ही होता है, और एकांतानुवृद्धिस्थान भी समय-समय प्रति वृद्धिरूप अन्य-अन्य (जुदा-जुदा) ही होता है । और
- इन दोनों से भिन्न जो परिणाम योगस्थान हैं उसके किसी एक भेद के निरंतर प्रवर्तने का काल दो समय से लेकर आठ समय तक है ॥242॥

www.JainKosh.org

योगस्थान	निरन्तर होने का काल
उपपाद	एक समय
एकान्तानुवृद्धि	एक समय
परिणाम योगस्थान	जघन्य — 2 समय उत्कृष्ट — 8 समय

परिणाम योगस्थान 1 समय में भी बदल सकता है । निरन्तर रहने की अपेक्षा जघन्य 2 समय कहा है ।

अट्ठसमयस्स थोवा, उभयदिसासुवि असंखसंगुणिदा ।
चउसमयोत्ति तहेव य, उवरिं तिदुसमयजोग्गाओ ॥243॥

- अर्थ— आठ समय निरंतर प्रवर्तने वाले योगस्थान सबसे थोड़े हैं । और सात को आदि लेकर चार समय तक प्रवर्तने वाले ऊपर-नीचे के दोनों जगह के स्थान असंख्यातगुणे हैं ।
- किंतु तीन समय और दो समय तक प्रवर्तने वाले योगस्थान ऊपर ही की तरफ रहते हैं । और उनका प्रमाण क्रम से असंख्यातगुणा है ।
- इन परिणामों की रचना करने पर जौ का आकार बन जाता है ॥243॥

www.JainKosh.org

योगस्थानों का काल की अपेक्षा कथन

द्वीन्द्रिय पर्याप्त के जघन्य परिणाम योगस्थान से संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान तक निरंतर योगस्थान हैं ।

इनकी कुल संख्या सामान्यरूप से $\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}}$ है ।

इसी की यव-रचना बताते हैं ।

योगयव की रचना

$$\frac{\text{कुल योगस्थान}}{\text{पल्य/असंख्यात}} = \text{एकभाग (A)}$$

जो बहुभाग है उतने 2 समय निरंतर प्रवृत्ति वाले स्थान हैं।

$$\frac{\text{एकभाग (A)}}{\text{पल्य/असंख्यात}} = \text{एकभाग (B)}$$

जो बहुभाग है उतने 3 समय निरंतर प्रवृत्ति वाले स्थान हैं।

$$\frac{\text{एकभाग (B)}}{\text{पल्य/असंख्यात}} = \text{एकभाग (C)}$$

जो बहुभाग है उतने 4 समय निरंतर प्रवृत्ति वाले स्थान हैं जो ऊपर-नीचे दो बराबर भागों में बंट जाते हैं ।

ऐसे आगे-आगे भी एकभाग को पल्य/असंख्यात का भाग दे-देकर एकभाग को शेष रखना । बहुभाग को 5, 6 आदि समयों तक चलने वाले योगस्थानों में देना ।

उदाहरण में सर्व योगस्थान = 65536, पल्य/असंख्यात = 4 माना

$\frac{65536}{4}$ = 16384 एकभाग, 16384 × 3 = 49152 बहुभाग

→ दो समय निरंतर प्रवृत्ति वाले स्थान

$\frac{16384}{4}$ = 4096 एकभाग, 4096 × 3 = 12288 बहुभाग

→ तीन समय निरंतर प्रवृत्ति वाले स्थान

$\frac{4096}{4}$ = 1024, 1024 × 3 = 3072 बहुभाग → $\frac{3072}{2}$ = 1536

→ 1536 नीचे के, 1536 ऊपर के चार समय वाले स्थान

www.JainKosh.org

$\frac{1024}{4}$ = 256 एकभाग, 256 × 3 = 768 बहुभाग, $\frac{768}{2}$ = 384

→ 384 ऊपर के, 384 नीचे के पाँच समय वाले स्थान

$\frac{256}{4}$ = 64 एकभाग, 64 × 3 = 192 बहुभाग, $\frac{192}{2}$ = 96

→ 96 ऊपर के, 96 नीचे के छः समय वाले स्थान

$\frac{64}{4}$ = 16 एकभाग, 16 × 3 = 48 बहुभाग, $\frac{48}{2}$ = 24

→ 24 ऊपर के, 24 नीचे के सात समय वाले स्थान

शेष 16 आठ समय वाले स्थान

www.JainKosh.org

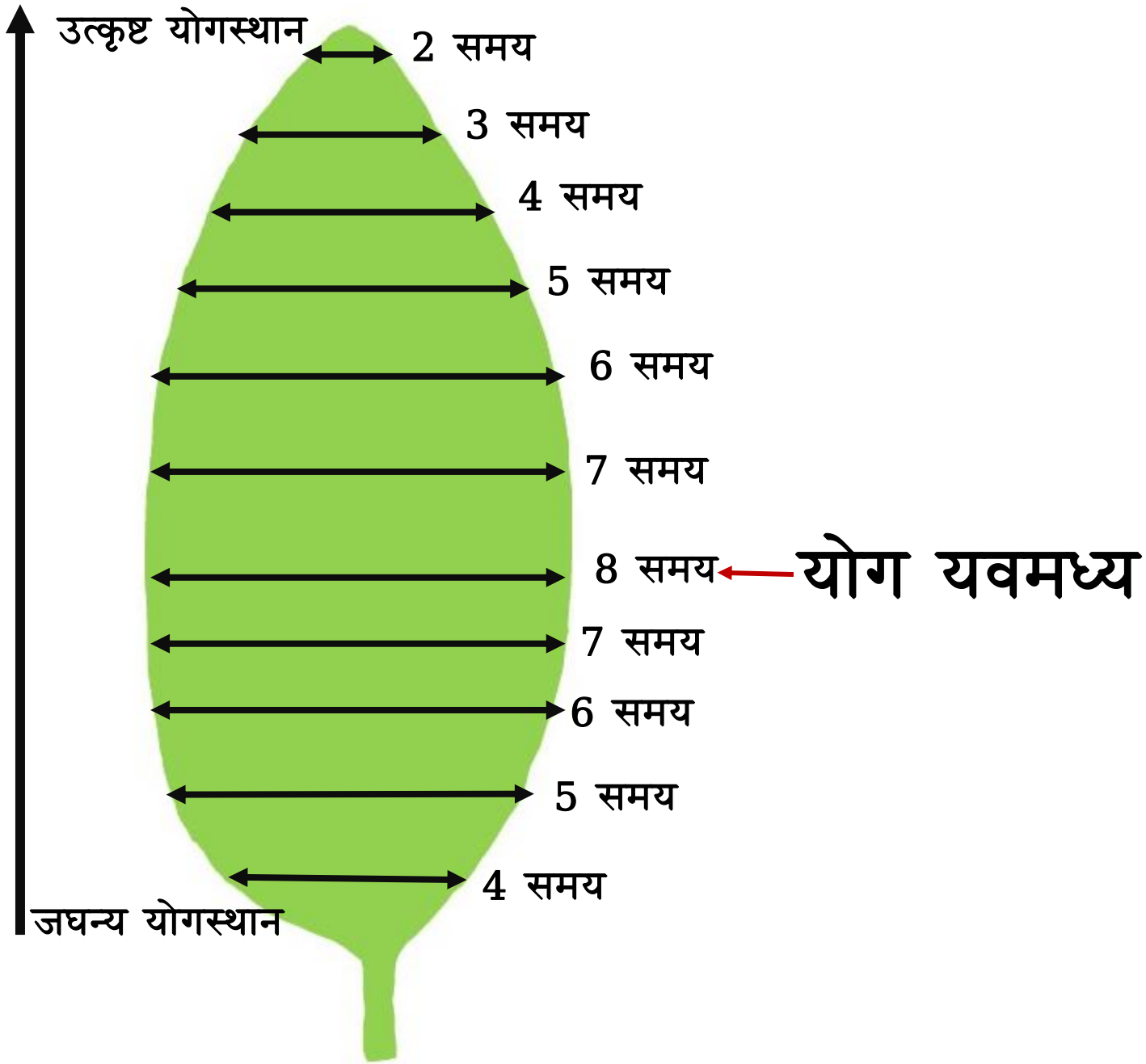
उत्कृष्ट योगस्थान
2 समय
3 समय
4 समय
5 समय
6 समय
7 समय
8 समय
योग यवमध्य
7 समय
6 समय
5 समय
4 समय
जघन्य योगस्थान

काल अपेक्षा
योगस्थानों की
यवाकार रचना

योगयव का अर्थ

जघन्य योगस्थान से उत्कृष्ट योगस्थान तक रचना बनाई है ।

इनमें जघन्य योगस्थान से ऊपर जाते हुए मध्य में 8 समय निरंतर पाये जाने वाले योगस्थान हैं ।

इसके ऊपर अधिक शक्ति वाले योगस्थान हैं, जो संख्या में अधिक हैं, परन्तु उनकी निरंतर पायी जाने की शक्ति क्रमशः कम होती जाती है ।

उत्कृष्ट शक्ति वाले योगस्थान मात्र 2 समय तक ही लगातार हो सकते हैं ।

मज्झे जीवा बहुगा, उभयत्थ विसेसहीणकमजुत्ता ।
हेट्ठिमगुणहाणिसला-दुवरि सलागा विसेसहिया ॥244॥

- अर्थ— पर्याप्त त्रसजीवों के प्रमाणरूप जौ की रचना के मध्यभाग में जीव बहुत हैं ।
- ऊपर और नीचे दोनों तरफ क्रम से यथायोग्य प्रमाण से हीन-हीन होते हैं ।
- तथा नीचे की गुणहानि शलाका से ऊपर की गुणहानि शलाका का प्रमाण कुछ अधिक है ॥244॥

www.JainKosh.org

योगस्थान में जीवयव

पर्याप्त त्रस जीवों के जघन्य परिणाम योगस्थान से उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान योगयव द्वारा समझे ।

अब इन योगस्थानों को धारण करने वाले जीव कहाँ-कहाँ पर कितने-कितने पाये जाते हैं— यह बताते हैं ।

इन त्रस पर्याप्त के परिणाम योगस्थानों को धारण करने वाले जीव यवाकार रचनारूप से होते हैं ।

जघन्य से लेकर ऊपर जीवों की संख्या दुगुणी-दुगुणी एक-एक गुणहानि में बढ़ती है ।

कुछ ऊपर जाकर यवमध्य आता है ।

इस यवमध्य के पश्चात् ऊपर-ऊपर जीवों की संख्या घटती जाती है ।

ऊपर-ऊपर जाते-जाते जीवों की संख्या क्रमशः चयहीन होते-होते आधी-आधी होती है ।

ऐसी अनेकों गुणहानियाँ व्यतीत होकर अंतिम स्थान आता है ।

इससे यह पता चलता है कि जघन्य योगस्थान के धारक जीव अल्प हैं, दूसरे योगस्थान के धारक जीव कुछ अधिक हैं, तीसरे योगस्थान के धारक जीव कुछ अधिक हैं ।

ऐसे कुछ योगस्थान आगे जाने पर उस योगस्थान के धारक जीव जघन्य योगस्थान धारक जीवों की अपेक्षा दुगुणे हैं ।

इस प्रकार क्रमशः प्रत्येक योगस्थान के धारक यवमध्य तक बढ़ते हुए हैं ।

यवमध्य से ऊपर के योगस्थानों में जीवों की संख्या घटती जाती है । अतः यवमध्य वाले स्थान पर पाये जाने वाले मध्यम योगस्थान से आगे के योगस्थान के धारक और भी कम हैं ।

ऐसे एक-एक चय कम करते हुए ऊपर यवमध्य के जीवों से आधे जीव हो जाते हैं ।

पुनः ऊपर-ऊपर के योगस्थानों के धारक जीव एक-एक चय कम होते हुए जाते हैं ।

ऊपर के अधिक शक्ति वाले योगस्थानों में जीव कम-कम पाये जाते हैं ।

उत्कृष्ट योगस्थान में पाये जाने वाले जीवों की संख्या सर्वल्प है ।

इतना ध्यान रहे जो योगस्थानों का यवमध्य, गुणहानि आयाम आदि है, वही जीवयव का यवमध्य, आयाम आदि नहीं है । जीवयव का यवमध्य काफी नीचे पाया जाता है तथा गुणहानि आयाम भी यहाँ भिन्न है तथा प्रत्येक गुणहानि में सदृश है ।

दव्वतियं हेट्ठुवरिम-दलवारा दुगुणमुभयमण्णोण्णं ।
जीवजवे चोद्दससय-बावीसं होदि बत्तीसं ॥245॥

- अर्थ— कल्पना कीजिये कि द्रव्यादि तीन का अर्थात् द्रव्य का, स्थिति का तथा गुणहानि आयाम का प्रमाण क्रम से 1422, 32 तथा 4 है ॥245॥

चत्तारि तिण्णि कमसो, पण अड अट्ठं तदोय बत्तीसं ।
किंचूणतिगुणहाणि-विभजिदे दव्वे दु जवमज्झं ॥246॥

- अर्थ— और नीचे तथा ऊपर की नाना गुणहानि का प्रमाण क्रम से 3 तथा 5 है । सब मिलकर द्विगुण अर्थात् दोनों गुणहानि का प्रमाण 8 हुआ । तथा
- नीचे और ऊपर की दोनों अन्योन्याभ्यस्त राशियों का प्रमाण क्रम से 8 तथा 32 होता है ।
- यहाँ पर कुछ कम तिगुनी गुणहानि (12- याने $\frac{711}{64}$) का भाग द्रव्य (1422) में देने से जीव-यवाकार के मध्य की जीवसंख्या 128 निकलती है ऐसा जानना ॥246॥

www.JainKosh.org

जीवों की संख्या की यवाकार रचना में अंकसंदृष्टि

द्रव्य (त्रस जीवों का प्रमाण) = 1422

स्थिति (योगस्थानों का प्रमाण) = 32

गुणहानि आयाम (एक गुणहानिस्थान) = 4

नाना गुणहानि = 8 (3 + 5 = 8)

नीचे की नाना गुणहानि का प्रमाण = 3

ऊपर की नाना गुणहानि का प्रमाण = 5

www.JainKosh.org

यवाकार मध्य जीवप्रमाण $= \frac{\text{द्रव्य प्रमाण}}{\text{कुछ कम तिगुणी गुणहानि}}$

$\frac{1422}{12-} = 128$ यवमध्य

यवमध्य से ऊपर और नीचे के गुणहानि निषेकों में अपनी-अपनी गुणहानि के चयप्रमाण क्रम से घटते जानना ।

चय $= \frac{\text{प्रथम निषेक}}{\text{दो गुणहानि}} = \frac{128}{8} = 16$

अतः ऊपर की गुणहानि के निषेक →

द्वितीय निषेक	128 – 16 = 112
तृतीय निषेक	112 – 16 = 96
अंतिम निषेक	96 – 16 = 80

गुणहानि का कुल द्रव्य = 416

ऊपर की गुणहानियों का द्रव्य

यह द्रव्य प्रत्येक गुणहानि में आधा होता है । अतः ऊपर की गुणहानियों का द्रव्य

$\frac{416}{2}$ = 208 द्वितीय गुणहानि द्रव्य

$\frac{208}{2}$ = 104 तृतीय गुणहानि द्रव्य

$\frac{104}{2}$ = 52 चतुर्थ गुणहानि द्रव्य

$\frac{52}{2}$ = 26 पांचवीं गुणहानि द्रव्य (चरम)

द्रव्य आधा होता है, तो चय का प्रमाण भी आधा-आधा होता जाता है ।

ऊपर की पाँचों गुणहानियाँ

	1st गुणहानि	2nd गुणहानि	3rd गुणहानि	4th गुणहानि	5th गुणहानि
अंतिम निषेक	80	40	20	10	5
तृतीय निषेक	96	48	24	12	6
द्वितीय निषेक	112	56	28	14	7
प्रथम निषेक	128	64	32	16	8
कुल द्रव्य	**416**	**208**	**104**	**52**	**26**

www.JainKosh.org

नीचे की गुणहानियाँ

नीचे की गुणहानि का प्रथम निषेक = यवमध्य – 1 चय

128 – 16 = 112

इसमें से एक-एक चय घटाने पर गुणहानि के सारे निषेक प्राप्त होते हैं । यथा

112	• प्रथम निषेक
112 – 16 = 96	• द्वितीय निषेक
96 – 16 = 80	• तृतीय निषेक
80 – 16 = 64	• चतुर्थ निषेक

www.JainKosh.org

इसके नीचे की गुणहानियों में भी द्रव्य व चय आधा-आधा होता है । यथा

	द्वितीय गुणहानि	तृतीय गुणहानि
प्रथम निषेक	56	28
द्वितीय निषेक	48	24
तृतीय निषेक	40	20
अंतिम निषेक	32	16
कुल द्रव्य	176	88

www.JainKosh.org

योगस्थान में जीवद्रव्य की यवाकार रचना

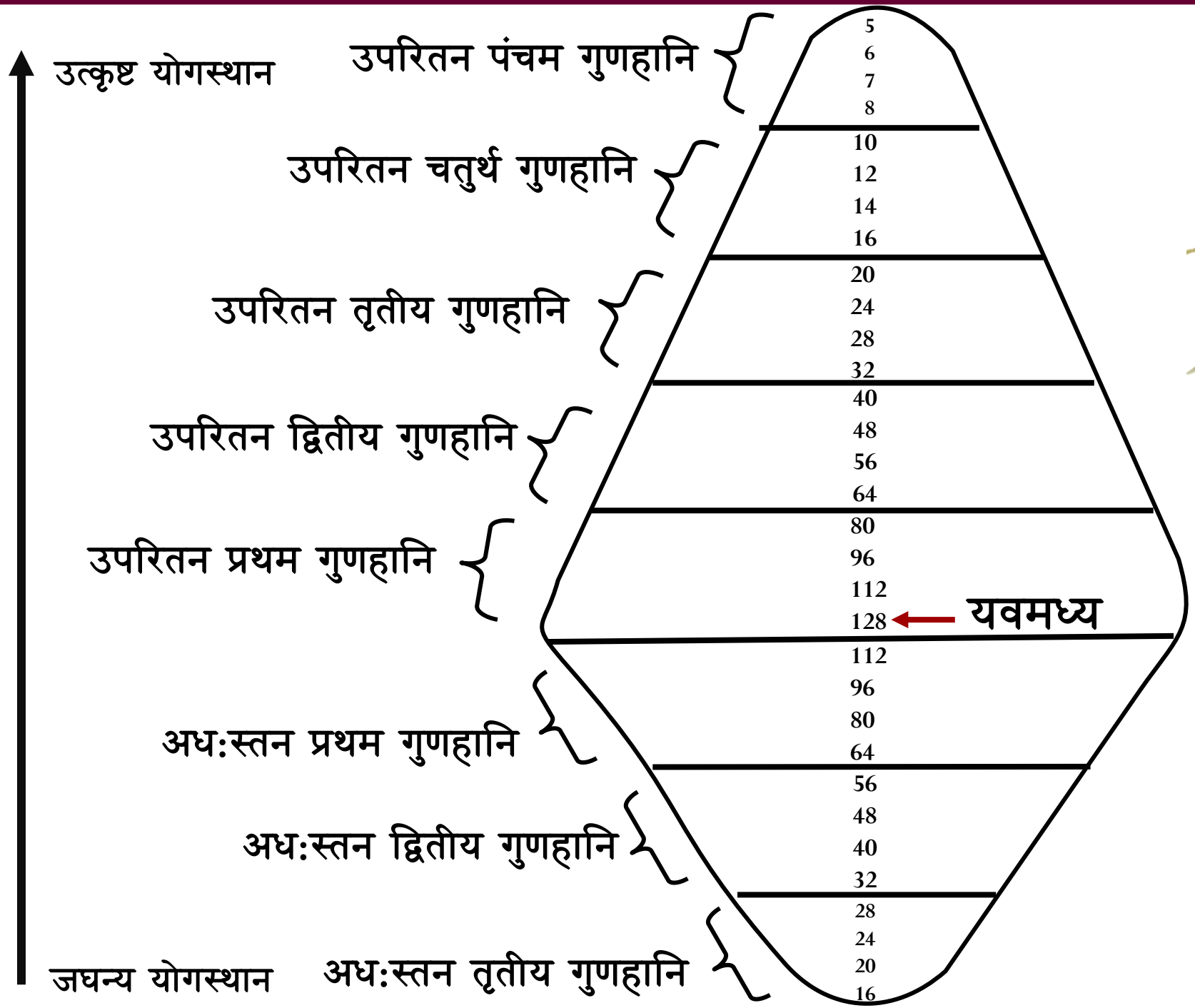

पुण्णतसजोगठाणं, छेदासंखस्ससंखबहुभागे ।
दलमिगिभागं च दलं, दव्वदुगं उभयदलवारा ॥247॥

- अर्थ— द्रव्यद्विक अर्थात् द्रव्य और स्थिति का प्रमाण क्रम से पर्याप्त त्रस जीवराशि के प्रमाण तथा पर्याप्त त्रस संबंधी परिणाम योगस्थानों के प्रमाण जानना । और
- पल्य के अर्द्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग प्रमाण नानागुणहानियों में असंख्यात का भाग देने से असंख्यात बहुभाग का जो प्रमाण हो उसका आधा तो नीचे की गुणहानि का और बाकी का आधा तथा अवशिष्ट असंख्यातवां एक भाग मिलकर ऊपर की नानागुणहानि का प्रमाण होता है । इस तरह दोनों नानागुणहानियों का प्रमाण समझना ॥247॥

www.JainKosh.org

णाणागुणहाणिसला, छेदासंखेज्जभागमेत्ताओ ।
गुणहाणीणद्धाणं, सव्वत्थ वि होदि सरिसं तु ॥248॥

- अर्थ— ऊपर नीचे की सब गुणहानियों के मिलाने पर नानागुणहानियों की संख्या पल्य के अर्द्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग मात्र है ।
- पूर्वोक्त स्थिति के प्रमाण में नानागुणहानि का भाग देने से एक गुणहानि के आयाम का प्रमाण होता है । सो गुणहानि के आयाम का प्रमाण सब जगह – ऊपर या नीचे की गुणहानि में समान है ।
- गुणहानिआयाम का दुगुना दो-गुणहानि का प्रमाण होता है ॥248॥

www.JainKosh.org

अण्णोण्णगुणिदरासी, पल्लासंखेज्जभागमेत्तं तु ।
हेट्ठिमरासीदो पुण, उवरिल्लमसंखसंगुणिदं ॥249॥

- अर्थ— अन्योन्याभ्यस्त राशि पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण है ।
- परंतु उसमें नीचे की गुणहानि की अन्योन्याभ्यस्त राशि से ऊपर की गुणहानि की अन्योन्याभ्यस्त राशि असंख्यातगुणी है ॥249॥

वास्तविक संख्याएँ

	उदाहरण	वास्तविक संख्याएँ
द्रव्य	1422	पर्याप्त त्रस जीव = $\frac{\text{जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल / संख्यात}}$
स्थिति	32	द्वीन्द्रिय पर्याप्त के परिणाम योगस्थान से अंतिम परिणाम योगस्थान तक = श्रेणी/असंख्यात
नाना गुणहानि	8	$\frac{\text{पल्य के छेद}}{\text{असंख्यात}}$
अधस्तन गुणहानि	3	$\frac{\text{नाना गुणहानि}}{2}$ से कम = $\frac{\text{छेद}}{\text{असंख्यात}\times 2}$ –
उपरितन गुणहानि	5	$\frac{\text{नानागुणहानि}}{2}$ से अधिक = $\frac{\text{छेद}}{\text{असंख्यात}\times 2}$ +
गुणहानि आयाम	$\frac{\text{स्थिति}}{\text{नानागुणहानि}} = \frac{32}{8}$	$\frac{\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}}}{\frac{\text{छेद}}{\text{असंख्यात}}} = \frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}} \times \frac{\text{असंख्यात}}{\text{छेद}} = \frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}}$
अन्योन्याभ्यस्त राशि	$2^3 = 8$ $2^5 = 32$	$2^{\text{छे/असंख्यात}\times 2}$ = पल्य/असंख्यात अधस्तन अन्योन्याभ्यस्त से उपरितन अन्योन्याभ्यस्त राशि असंख्यात गुणित है ।

इगिठाणफड्ढयाओ, समयपबद्धं च जोगवड्ढी च ।
समयपबद्धचयट्ठं, एदे हु पमाणफलइच्छा ॥250॥

- अर्थ— द्वीन्द्रिय पर्याप्त का पहला जघन्य परिणाम योगस्थान का स्पर्द्धक, समयप्रबद्ध और योगों की वृद्धि – ये तीनों समयप्रबद्ध के बढ़ने का प्रमाण लाने के लिये क्रम से त्रैराशिक संबंधी प्रमाणराशि, फलराशि और इच्छाराशि हैं – ऐसा समझना ॥250॥

एक-एक योगस्थान से कितना समयप्रबद्ध बंधता है, इसे त्रैराशिक से निकालते हैं ।

जघन्य योगस्थान = जघन्य स्पर्धक × $\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}}$

(क्योंकि जघन्य योगस्थान में इतने जघन्य स्पर्धक पाये जाते हैं ।)

एक योगस्थान से दूसरे योगस्थान में वृद्धि का प्रमाण = $\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}}$ × जघन्य स्पर्धक

जघन्य योगस्थान से 1 समयप्रबद्ध बंधता है, तो जघन्य वृद्धि से कितना बंधेगा ?

$$\frac{1 \text{ समयप्रबद्ध}}{\text{जघन्य स्पर्धक} \times \frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}}} \times \frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}} \times \text{जघन्य स्पर्धक}$$

$$= \frac{\text{समयप्रबद्ध} \times \frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}}}{\text{असंख्यात}}$$ यह वृद्धि का प्रमाण है ।

अर्थात् दूसरे योगस्थान में इतने प्रदेश अधिक बंधेंगे । तीसरे में इतने प्रदेश अधिक बंधेंगे ।

www.JainKosh.org

दुगुना, तिगुना आदि समयप्रबद्ध

इस प्रकार जहाँ योगस्थान दुगुना हो जाता है, वहाँ समयप्रबद्ध भी दुगुना होगा → समयप्रबद्ध × 2 ।

जहाँ योगस्थान असंख्यात गुणा होगा, वहाँ समयप्रबद्ध भी असंख्यात गुणा होगा । समयप्रबद्ध × असंख्यात

अंतिम योगस्थान जघन्य योगस्थान से असंख्यात गुणा है, अतः उत्कृष्ट समयप्रबद्ध = समयप्रबद्ध × असंख्यात होता है । 1 समय में इससे अधिक प्रदेशबन्ध नहीं हो सकता ।

उदाहरण

जघन्य स्पर्धक की शक्ति = 600

जघन्य योगस्थान की शक्ति = 180000

तो जघन्य योगस्थान में कुल जघन्य स्पर्धक = $\frac{180000}{600}$ = 300

अर्थात् 300 × 600 = जघन्य योगस्थान

$\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}}$ = 10

www.JainKosh.org

300 जघन्य स्पर्धक से 1 समयप्रबद्ध बंधता है, तो 10 जघन्य स्पर्धक से कितना बंधेगा ?

$$\frac{1 \text{ समयप्रबद्ध}}{300 \text{ जघन्य स्पर्धक}} \times 10 \text{ जघन्य स्पर्धक} = \frac{1 \text{ समयप्रबद्ध} \times 10}{300}$$

माना कि 1 समयप्रबद्ध का प्रमाण = 18,00,000

तो वृद्धि प्रदेशों की संख्या = $\frac{18 \text{ लाख} \times 10}{300}$ = 60000

जघन्य योगस्थान के द्वारा बद्ध प्रदेश = 18 लाख

द्वितीय योगस्थान के द्वारा बद्ध प्रदेश = 18 लाख + 60,000

तृतीय योगस्थान के द्वारा बद्ध प्रदेश = 18 लाख + 1,20,000

ऐसे सदृश वृद्धि करते-करते दुगुना, तिगुना आदि समयप्रबद्ध होता है ।

बीइंदियपज्जत्त-जहण्णट्ठाणा दु सण्णिपुण्णस्स ।
उक्कस्सट्ठाणोत्ति य, जोगट्ठाणा कमे उड्ढा ॥251॥

- अर्थ— द्वीन्द्रिय पर्याप्त के जघन्य परिणाम योगस्थान से लेकर संज्ञी पर्याप्त के उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान तक परिणाम योगस्थान क्रम से एक-एक स्थान में समान वृद्धि प्रमाण से बढ़ते हुए जानने चाहिये ॥251॥

सेढियसंखेज्जदिमा, तस्स जहण्णस्स फड्डया होंति ।
अंगुलअसंखभागा, ठाणं पडि फड्डया उड्ढा ॥252॥

- अर्थ— द्वीन्द्रिय पर्याप्त का जघन्य परिणाम योगस्थान जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य स्पर्धकों के समूहरूप है । और
- इसके बाद हर एक स्थान के प्रति सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक बढ़ते हैं ।
- जघन्य स्पर्धक के जितने अविभाग-प्रतिच्छेद हैं उनका सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतने-उतने अविभाग-प्रतिच्छेद एक-एक योगस्थान में बढ़ते हैं ॥252॥

www.JainKosh.org

धुववड्ढीवड्ढंतो, दुगुणं दुगुणं कमेण जायंते ।
चरिमे पल्लच्छेदाऽसंखेज्जादिमो गुणो होदि ॥253॥

- अर्थ— इस तरह स्थान-स्थान प्रति ध्रुववृद्धि अर्थात् एक-सी वृद्धि से बढ़ता-बढ़ता हुआ जघन्य योगस्थान क्रम-क्रम से दूना-दूना होता जाता है । और
- अंत में संज्ञी पर्याप्त जीव के उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान में गुणाकार का प्रमाण पल्य के अर्द्धच्छेद के असंख्यातवें भागप्रमाण हो जाता है । अर्थात् जघन्य योगस्थान के अविभाग-प्रतिच्छेदों के प्रमाण का पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतने सर्वोत्कृष्ट योगस्थान के अविभाग-प्रतिच्छेद होते हैं ॥253॥

www.JainKosh.org

उत्कृष्ट समयप्रबद्ध

ऐसे ध्रुववृद्धि होते-होते अंतिम योगस्थान का समयप्रबद्ध

$$= \text{जघन्य समयप्रबद्ध} \times \frac{\text{छे}}{\text{असंख्यात}}$$

क्योंकि जघन्य योगस्थान से उत्कृष्ट योगस्थान $\frac{\text{छे}}{\text{असंख्यात}}$ गुणा है ।

www.JainKosh.org

आदी अंते सुद्धे, वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा ।
सेढिअसंखेज्जदिमा, जोगट्ठाणा णिरंतरगा ॥254॥

- अर्थ— आदि (जघन्य स्थान) को अन्त (उत्कृष्ट स्थान) में से घटाने पर बाकी जो प्रमाण हो उसको वृद्धि से (सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धकों के अविभाग-प्रतिच्छेदों से) भाजित कर तथा एक स्थान और मिला के जो प्रमाण हो उतने सब अंतररहित योगस्थान जानने । सो ये स्थान जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ॥254॥

www.JainKosh.org

समस्त निरंतर योगस्थानों की संख्या

- $\frac{\text{अन्तस्थान} - \text{आदि स्थान}}{\text{वृद्धि}} + 1 = \textbf{सर्व योगस्थान}$
- $\frac{\text{जघन्य योगस्थान} \times \frac{\text{छे}}{\text{असंख्यात}} - \text{जघन्य योगस्थान}}{\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}} \times \text{जघन्य स्पर्धक}} + 1$
- $\frac{\text{जघन्य योगस्थान} \times (\frac{\text{छे}}{\text{असंख्यात}} - 1)}{\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}} \times \text{जघन्य स्पर्धक}} + 1$
- $\frac{\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}} \times \text{जघन्य स्पर्धक} \times (\frac{\text{छे}}{\text{असंख्यात}} - 1)}{\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}} \times \text{जघन्य स्पर्धक}} + 1$
- $\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}} \times (\frac{\text{छे}}{\text{असंख्यात}} - 1) \times \frac{1}{\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}}} + 1$
- **संक्षेप में** $= \frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}} \times$ **असंख्यात**

अंतरगा तदसंखेज्जदिमा सेढीअसंखभागा हु ।
सांतरणिरंतराणि वि, सव्वाणि वि जोगठाणाणि ॥255॥

- अर्थ— अन्तर वाले योगस्थान उन निरंतर योगस्थानों के असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं । ये भी जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । और
- सांतर तथा निरंतर मिश्ररूप योगस्थान अंतरगत योगस्थानों के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं, तो भी वे जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही है ।
- इस तरह सब योगस्थान मिलकर भी श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही कहे हैं ॥255॥

www.JainKosh.org

निरंतर योगस्थान

- जिनके योगस्थानों के बीच में कोई अंतर नहीं पड़ता । क्र. 75 से 84

सांतर योगस्थान

- जो 6 अंतर स्थान हैं, वे सांतर योगस्थान हैं ।

सांतर-निरंतर

- जिनमें अंतर भी है, और निरंतर कुछ स्थान भी है । 1 से लेकर 74 तक ।

योगस्थान	गुणकार	संदृष्टि
सांतर-निरंतर योगस्थान	स्तोक	$\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}}$
सांतर योगस्थान	असंख्यात गुणा	$\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}} \times \text{असंख्यात}$
निरंतर योगस्थान	असंख्यात गुणा	$\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असंख्यात}} \times \text{असंख्यात} \times \text{असंख्यात}$

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णओ जोगो । पज्जत्तसण्णिपंचिंदियस्स उक्कस्सओ होदि ॥256॥

- अर्थ— इन सब योगस्थानों में सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्त के अंतिम क्षुद्रभव के पहले समय में जघन्य उपपाद योगस्थान होता है । वह तो आदि जानना । और
- सैनी पंचेंद्रिय पर्याप्त जीव के उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान होता है । वह अंतस्थान है, ऐसा जानना ॥256॥

www.JainKosh.org

आदि योगस्थान

- सूक्ष्म निगोदिया लब्धि-अपर्याप्त के अंतिम भव में जघन्य उपपाद योगस्थान

अन्त योगस्थान

- संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक का उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान

www.JainKosh.org

जोगा पयडिपदेसा, ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ।
अपरिणदुच्छिण्णेसु य, बंधट्ठिदिकारणं णत्थि ॥257॥

- अर्थ— प्रकृति और प्रदेशबंध ये दोनों ही, योगों के निमित्त से होते हैं ।
- स्थिति और अनुभागबंध कषाय के निमित्त से होते हैं ।
- जिसके जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त कालप्रमाण कषायस्थान अपरिणत अर्थात् उदयरूप नहीं होते ऐसे उपशांत-कषाय तथा कषायरहित क्षीण-कषाय और सयोगकेवली के होने वाला एक समय का बंध में स्थिति-बंध का कारण नहीं है ।
- 'च' शब्द से अयोगकेवली के चारों बंध के कारणभूत योग और कषाय नहीं हैं ॥257॥

www.JainKosh.org

बंध के कारण

बंध	कारण
प्रकृति, प्रदेश बंध	योग
स्थिति, अनुभाग बंध	कषाय

www.JainKosh.org

गुणस्थानों में बंध

गुणस्थान	बंध
1 – 10	चारों प्रकार का
11, 12, 13	प्रकृति, प्रदेश बंध
14, सिद्ध	अबंध

www.JainKosh.org

सेढिअसंखेज्जदिमा, जोगट्ठाणाणि होंति सव्वाणि ।
तेहिं असंखेज्जगुणो, पयडीणं संगहो सव्वो ॥258॥

- अर्थ— निरंतर, सांतर एवं निरंतर-सांतर सब मिलकर कुल योगस्थान जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । और
- उनसे असंख्यात लोक गुणा सब मतिज्ञानावरणादि प्रकृतियों का समुदाय है ॥258॥

www.JainKosh.org

तेहिं असंखेज्जगुणा, ठिदिअवसेसा हवंति पयडीणं ।
ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा तत्तो असंखगुणा ॥259॥

- अर्थ— उन प्रकृति-संग्रहों से प्रकृतियों की स्थिति के भेद असंख्यात गुणे हैं ।
- उन स्थिति के भेदों से स्थिति-बंधाध्यवसायस्थान असंख्यात गुणे हैं ॥259॥

अणुभागाणं बंधज्झवसाणमसंखलोगगुणिदमदो ।
एत्तो अणंतगुणिदा, कम्मपदेसा मुणेयव्वा ॥260॥

- अर्थ— इन स्थिति-बंधाध्यवसायस्थानों से असंख्यात लोक गुणे अनुभाग-बंधाध्यवसाय स्थान हैं ।
- इनसे अनन्तगुणे कर्मों के परमाणु जानने ॥260॥

www.JainK

अल्प-बहुत्व

पद	अल्प बहुत्व	प्रमाण
योगस्थान	स्तोक	$\frac{-}{\text{असंख्यात}}$
प्रकृति संग्रह	असंख्यात गुणा	$\equiv \partial$
स्थिति भेद	असंख्यात गुणा	$\equiv \partial \times$ संख्यात पल्य
स्थितिबंध अध्यवसाय स्थान	असंख्यात गुणा	$\equiv \partial \times$ संख्यात पल्य $\times \equiv \partial$
अनुभाग अध्यवसाय स्थान	असंख्यात गुणा	$\equiv \partial \times$ संख्यात पल्य $\times \equiv \partial \times \equiv \partial$
कर्म के प्रदेश	अनंत गुणे	$\frac{\text{सिद्ध}}{\text{अनंत}}$

www.JainKosh.org

अल्प-बहुत्व - प्रकृति-संग्रह

सर्व प्रकृतियों के भेद असंख्यात लोक हैं ।

सामान्यतया कर्म 148 प्रकार का है, परन्तु विशेष भेद करने पर वे प्रकृतियाँ असंख्यात लोक प्रमाण हैं । इसे ज्ञानावरण कर्म के माध्यम से समझते हैं ।

1. श्रुतज्ञान के पर्याससमास ज्ञान के भेद = ≡ असंख्यात × ≡ असंख्यात

क्योंकि इसके असंख्यात षट्स्थान प्रमाण भेद होते हैं । अतः इन प्रत्येक भेदों को आवरण करने वाले श्रुतज्ञानावरण के भेद भी ≡ ∂ ×≡ ∂ होते हैं ।

2. चूंकि श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है, अतः श्रुतज्ञानावरण जितने ही भेद मतिज्ञानावरण के भी होते हैं ।

3. अवधिज्ञानावरण में —

- देशावधि ज्ञानावरण के भेद = ≡ ∂
- परमावधि ज्ञानावरण के भेद = ≡ ∂∂
- सर्वावधि ज्ञानावरण के भेद = 1

4. मन:पर्यय ज्ञानावरण — कल्पकाल × ∂

5. केवलज्ञानावरण के भेद — 1

इन सबको मिलाने पर ज्ञानावरण कर्म के ≡ ∂ होते हैं ।

www.JainKosh.org

अल्प-बहुत्व

स्थिति के भेद

- एक-एक प्रकृति की स्थिति के भेद असंख्यात हैं, तो सर्व भेदों की स्थिति के प्रकार असंख्यात गुणा होते ही हैं ।

स्थितिबंध अध्यवसाय स्थान

- एक-एक स्थितिबंध के कारणभूत जीव के परिणाम स्थितिबंध अध्यवसाय स्थान कहलाते हैं । प्रत्येक स्थिति के बांधने हेतु परिणाम असंख्यात लोक हैं, तो सर्व परिणाम असंख्यात लोक गुणे हुए ।

www.JainKosh.org

मूल प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति-बन्ध

प्रकृति	बन्ध
ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय, वेदनीय	30 कोड़ाकोड़ी सागर
नाम, गोत्र	20 कोड़ाकोड़ी सागर
मोहनीय	70 कोड़ाकोड़ी सागर
आयु	33 सागर

1 कोड़ा-कोड़ी = 1 करोड़ x 1 करोड़

1 सागर = 10 कोड़ा-कोड़ी पल्य

1 पल्य = असंख्यात वर्ष

उत्कृष्ट स्थिति-बन्ध अर्थात् वर्तमान समय से लेकर इतने समय तक कर्म का सत्त्व पाया जाता है ।

आबाधाकाल में निषेक रचना नहीं पायी जाती है ।

आबाधा को छोड़कर शेष सर्व स्थिति के समयों में कर्म पाया जाता है ।

स्थिति स्थान के प्रकार

स्थिति स्थान

- आयु को छोड़कर शेष 7 कर्मों की अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति — अंत: कोड़ाकोड़ी सागर

जैसे मिथ्यात्व कर्म के स्थिति स्थान = 70 कोड़ाकोड़ी सागर — अंत कोड़ाकोड़ी सागर अर्थात्

70 कोड़ाकोड़ी सागर = पहला स्थिति स्थान

70 कोड़ाकोड़ी सागर – 1 समय = दूसरा स्थिति स्थान

70 कोड़ाकोड़ी सागर – 2 समय = तीसरा स्थिति स्थान

ऐसे 1-1 समय कम करते हुए जघन्य स्थिति के प्रकार तक जाना । इन सबका समूह मिथ्यात्व के स्थिति स्थान हैं

ऐसे ही प्रत्येक कर्म के ऊपर लगाना ।

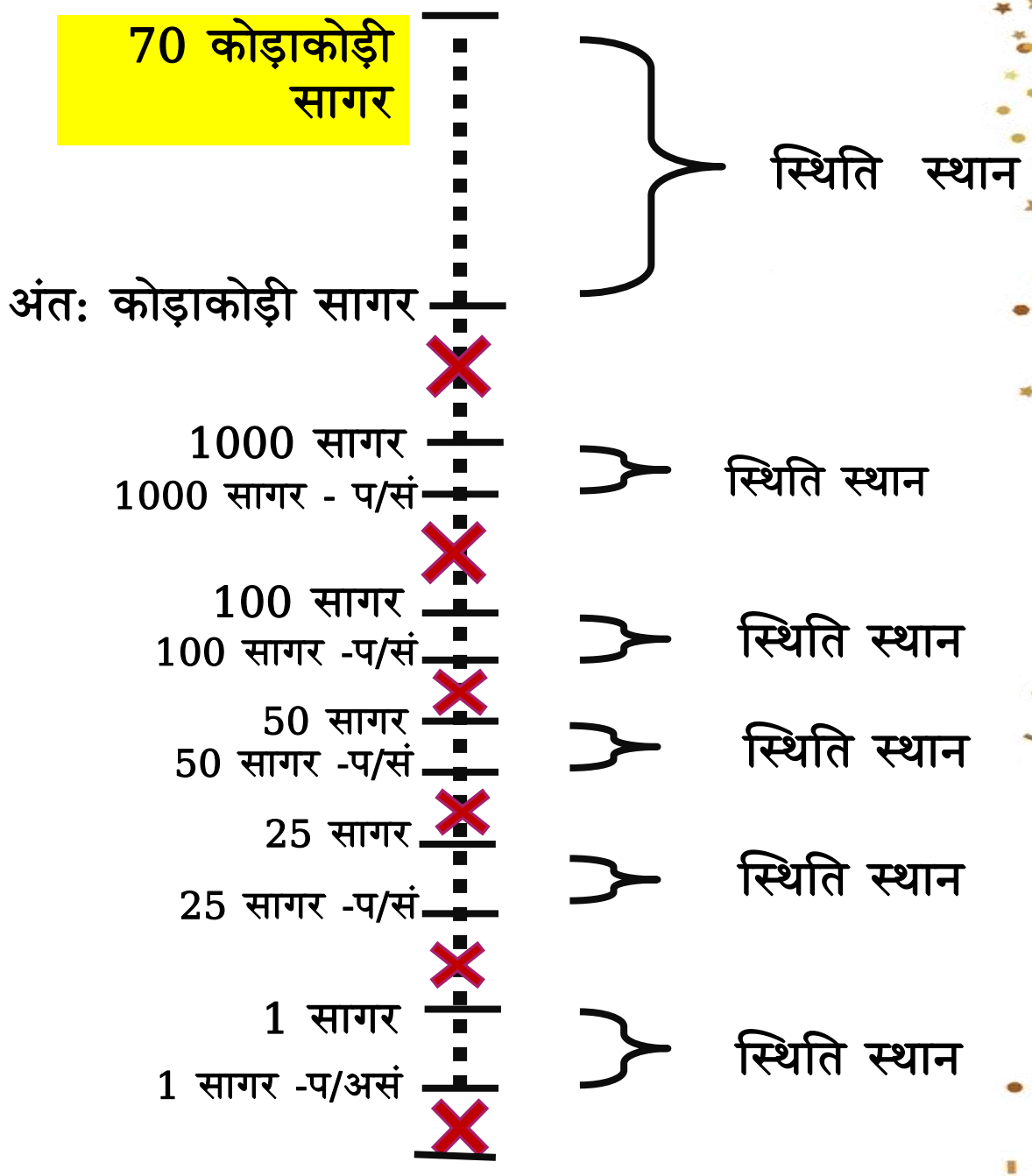
70 कोड़ाकोड़ी सागर
स्थिति स्थान
अंत: कोड़ाकोड़ी सागर
1000 सागर
1000 सागर - प/सं
स्थिति स्थान
100 सागर
100 सागर -प/सं
स्थिति स्थान
50 सागर
50 सागर -प/सं
स्थिति स्थान
25 सागर
25 सागर -प/सं
स्थिति स्थान
1 सागर
1 सागर -प/असं
स्थिति स्थान

अनुभाग बंध अध्यवसाय स्थान

- अनुभाग बंध को कारणभूत जीव के परिणाम अनुभाग बंध अध्यवसाय स्थान कहलाते हैं । प्रत्येक स्थितिबंध में जघन्य अनुभाग से लेकर उत्कृष्ट अनुभाग तक प्रत्येक के बंध हेतु असंख्यात लोक परिणाम होते हैं । अतः अनुभाग बंध अध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक होते हैं ।

www.JainKosh.org

- Reference : गोम्मटसार कर्मकांड, सम्यग्ज्ञान चंद्रिका, धवल पुस्तक 10

Presentation developed by

Smt. Sarika Vikas Chhabra

- For updates / feedback / suggestions, please contact
  - Sarika Jain, sarikam.j@gmail.com
  - www.jainkosh.org
  - ☎: 94066-82889

- इसी विषय के विडियो लेक्चर हमारे चैनल पर उपलब्ध हैं । आप अवश्य लाभ लें । www.Jainkosh.org/wiki/Videos पेज पर जाएँ एवं प्लेलिस्ट चुनें ।